चौथी दुनिया

www.chauthiduniya.com

हिंदी का पहला साप्ताहिक अख़बार

1986 से प्रकाशित | 29 मई- 04 जून 2017 | नई दिल्ली | हर शुक्रवार को प्रकाशित | Postal Regn. No. DL (ND)-11/6139/2015-17, RNI No. DELHIN/2009/30467

सपनों का सौदागर

नरेंद्र मोदी की सरकार को तीन साल पूरे हो गए. तीन साल का वक्त कम नहीं होता है. ख़ास कर तब, जब इस देश के प्रधानमंत्री ने अपने देश की जनता से इतने बड़े वादे किए हों, इतने बड़े-बड़े सपने दिखाए हों, जिसके भरोसे जनता ने ऐतिहासिक बहुमत दे दिया. आज तीन साल बाद जनता उन वादों को, उन सपनों को पूरा होते देखना चाहती है. क्या वो वादे पूरे हुए? क्या वो सपने हक़ीक़त बन पाए? इन्हीं सवालों का जवाब तलाशने की कोशिश चौथी दुनिया ने की.

संतोष भारतीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सफलतापूर्वक तीन साल पूरे कर लिए हैं. इन तीन सालों में देश में कई तरह के रंग बिखेरे गए हैं. कुछ गहरे हैं, कुछ धूमिल हैं, कुछ मिले-जुले हैं, पर जो सबसे गहरा रंग है, वो ये कि यूपीए के आख़िरी चार साल, जिसमें देश का विश्वास सरकार नाम की संस्था से हिल गया था. हर महीने कोई न कोई घोटाला, सीएजी की रिपोर्ट, सीबीआई के ऊपर आरोप. मंत्री और मंत्री-पुत्रों के भ्रष्टाचार में लिप्त होने की संभावनाएं, जिसके पुख्ता सबूत नहीं थे, तब भी लोगों ने उस पर पुख्ता जैसा ही विश्वास किया. जितना विश्वास उन्होंने यूपीए के भ्रष्टाचार पर किया था, उतना ही विश्वास किया नरेंद्र मोदी के वादों पर. तीन साल के शासनकाल में नरेंद्र मोदी ने देश के लोगों को यह विश्वास दिला दिया कि वे भ्रष्टाचारी नहीं हैं. उनके मंत्रिमंडल में कोई भ्रष्टाचारी नहीं हुआ, कोई घोटाला नहीं हुआ और वो देश की जनता के विश्वासों पर खरे उतरने वाले प्रधानमंत्री हैं. नरेंद्र मोदी ने देश के हर व्यक्ति के मन में स्वाभिमान की एक नई परिभाषा पैदा की कि हम पाकिस्तान को उसके घर में जाकर मार सकते हैं. अगर इसका विश्लेषण करें कि विपक्ष क्यों उत्तर प्रदेश में इतनी बुरी तरह हारा, तो उसका एक तथ्य ये सामने आता है कि जिस चीज को प्रधानमंत्री ने सफलतापूर्वक लोगों के स्वाभिमान से जोड़ दिया और उसी चीज का विरोध विपक्ष ने किया तो शायद लोगों को लगा कि ये तो देशहित के खिलाफ बातें कर रहे हैं, जबकि मोदी देश के सम्मान की बातें कर रहे हैं. मोदी की इस स्वीकार्यता ने लोगों के मन में ये सवाल खड़ा किया कि जो पाकिस्तान के ऊपर हुई सर्जिकल स्ट्राइक का विरोध करते हैं या उसके ऊपर सवाल उठाते हैं, वो लोग भारत के प्रति कम, पाकिस्तान के प्रति ज्यादा प्यार रखते हैं.

अर्थव्यवस्था को तो नोटबंदी का कोई फ़ायदा नहीं हुआ, लेकिन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को राजनैतिक फ़ायदा इसलिए हुआ क्योंकि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सफलतापूर्वक लोगों के दिमाग़ में ये बात बैठा दी कि वो एंटी रिच (अमीरों के ख़िलाफ़) हैं और हिंदुस्तान के लोगों के मन में ये बात पहुंचना बड़ी बात है.

उग्र राष्ट्रवाद और अमीर विरोधी भावना

मोदी जिन भावनाओं के ऊपर चुनाव जीत कर प्रधानमंत्री बने थे, उन भावनाओं के अनुरूप मोदी के वादे तो लोगों के सामने थे, लेकिन मोदी एक मनोवैज्ञानिक लड़ाई हार रहे थे, जिसका प्रगटीकरण पहले दिल्ली और फिर बिहार विधानसभा के चुनाव में हुआ. शायद वहीं से नरेंद्र भाई मोदी इस सोच में पड़े होंगे कि उन्हें किस तरह विपक्ष को राजनीतिक तौर पर मात देनी है. नरेंद्र मोदी की इस सोच ने उन्हें दो जगह पहुंचाया. एक तो सर्जिकल स्ट्राइक के जरिए उन्होंने देश के मन को उग्र राष्ट्रवाद की सीमा-रेखा में लाकर खड़ा कर दिया. दूसरा, आर्थिक मोर्चे पर उन्हें गरीबों के पक्ष में खड़ा कर दिया. नरेंद्र मोदी ने नोटबंदी का फैसला ये सोच कर लिया था कि इससे उन्हें अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए 4 लाख करोड़ रुपए मिल जाएंगे और मोटे तौर पर 15 लाख करोड़ रुपए मिलेंगे, जिसमें 4 लाख करोड़ की वो रकम भी होगी, जो ब्लैकमनी या नकली नोट के नाम पर बाजार में चल रही है. दरअसल, भारतीय बाजार में संचालित होने वाली दो नंबर की अर्थव्यवस्था वाली करेंसी मुख्य मुद्रा में आ जाएगी, बैंकों में आ जाएगी. लेकिन ऐसा हुआ नहीं. 4 लाख करोड़ अतिरिक्त आ गए. 15 लाख करोड़ चलन में थे और वो पैसा भी सफेद हो गया जो अवैध था, वो पैसा भी वैध हो गया जो नकली नोट के रूप में था. शायद सबसे पहले यही दो श्रेणी के रुपए सफेद हुए और इसमें व्यवस्था ने नकली नोट वालों और काले धन वालों का जमकर साथ दिया. ये सच है कि इससे दो नंबर की अर्थव्यवस्था दो महीने के लिए खत्म हो गई, लेकिन इसे बनाए रखने के लिए कदम नहीं उठाए गए इसलिए आज हम फिर वहीं खड़े हैं. जितना पैसा उस समय काले धन के रूप में सिस्टम में था, उतना ही पैसा काले धन के रूप में बाजार में घूम रहा है. अर्थव्यवस्था से समानान्तर अर्थव्यवस्था का जो तत्व समाप्त हो गया था वो वित्त मंत्रालय या बैंकों की काहिली से फिर अपने पुराने रूप में पहुंच गया. वो कैश जो अर्थव्यवस्था में वापस आ गया था, नए नोट जारी होने के बाद, सारा कैश लोगों के पास वापस पहुंच गया. माना जा रहा है कि लगभग 80 प्रतिशत पहुंच गया. 20 प्रतिशत भी धीरे-धीरे बाहर आ जाएगा, ऐसा माना जा रहा है.

अर्थव्यवस्था को तो नोटबंदी का कोई फायदा नहीं हुआ, लेकिन प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को राजनैतिक फायदा इसलिए हुआ क्योंकि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सफलतापूर्वक लोगों के दिमाग में ये बात बैठा दी कि वो एंटी रिच (अमीरों के खिलाफ) हैं और हिंदुस्तान के लोगों के मन में ये बात पहुंचना बड़ी बात है. हिन्दुस्तान के लोगों के लिए प्रो पुअर होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना एंटी रिच होना है. प्रधानमंत्री मोदी ने अपने को एंटी रिच यानि अमीर विरोधी की छवि के रूप में जनता के सामने रखा. गरीब नरेंद्र मोदी के पक्ष में आया और उसने इनमें अपने नेता की छवि देखनी शुरू कर दी. विपक्ष ने अपनी साख यहां भी खराब की. वो न मोदी का समर्थन कर रहा था, बल्कि भाषा में मोदी का विरोध ज्यादा कर रहा था. इसने गरीबों के मन में एक और बात डाल दी कि विपक्ष उस आदमी के खिलाफ है जो हमारे लिए अमीरों से लड़ रहा है. नरेंद्र मोदी की इस चाल ने हिन्दुस्तान में क्लास वार में गरीबों का पक्षधर होने का एक सार्थक संदेश दे दिया. मोदी गरीबों के साथ हैं और विपक्ष अमीरों के साथ है, ये माहौल मोदी जी ने गरीबों के मन में सफलतापूर्वक प्रवेश करा दिया. भारतीय जनता पार्टी के नेताओं का मानना है कि (शेष पृष्ठ 2 पर)

4 कृषि, रोज़गार, कालाधन, नक़ली नोट और नोटबंदी

6 लचर रक्षा नीति का 'राष्ट्रवाद'

10 बेहाल व्यापार, कैसे बहे विकास की बयार

सपनों का सौदागर

जनधन और उज्ज्वला ने किया भाजपा का भला

पृष्ठ 1 का शेष

अब 2019 को लेकर भारत की जनता के मन में न कोई संशय है, न संकोच है. उनका मानना है कि 2019 में दोबारा भाजपा की सरकार बनेगी और नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री होंगे.

उत्तर प्रदेश के चुनाव ने इसमें बहुत बड़ा रोल निभाया. पूरा मतदान भारतीय जनता पार्टी के पक्ष में गया, जबकि कुल वोटों की संख्या का बहुमत कांग्रेस, समाजवादी पार्टी और मायावती के पक्ष में है, लेकिन सीटें सबसे ज्यादा भाजपा को मिली हैं. उत्तर प्रदेश के इस परिणाम ने आने वाले सात सालों के लिए नरेंद्र मोदी का रास्ता लगभग साफ कर दिया है.

योगी आदित्यनाथ को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाना भी नरेंद्र मोदी के पक्ष में गया. नरेंद्र मोदी को उत्तर प्रदेश में एक ऐसे सख्त चेहरे की जरूरत थी, जिसके ऊपर भ्रष्टाचार का आरोप न लगा हो और जो अपने मन, वचन और कर्म से नरेंद्र मोदी के बनाए हुए रोड मैप पर चलने में आनाकानी न करे. योगी आदित्यनाथ इसमें एकदम सही बैठे. भारतीय जनता पार्टी के लिए उत्तर प्रदेश इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि अगर उत्तर प्रदेश से 73 सीटें भारतीय जनता पार्टी को न मिली होतीं, तो केन्द्र में उनकी सरकार नहीं बनी होती. दरअसल, नरेंद्र मोदी ने दो बड़े राजनीतिक रिस्क लिए. एक नोटबंदी और नोटबंदी से फायदा न होने के बावजूद उस नोटबंदी को राजनैतिक तौर पर अपने पक्ष में मोड़ना. दूसरा, योगी आदित्यनाथ को उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाना, जिसने भारतीय जनता पार्टी या देश में ये भाव पैदा किया कि मोदी मैरिट के ऊपर चलते हैं. पार्टी के भीतर के गुटों के दबाव को नकारते हैं.

भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश में जीत की भूमिका उज्ज्वला योजना ने तैयार की, जिसमें लकड़ी के चूल्हे की जगह गैस का चूल्हा महिलाओं को मुफ्त दिया गया. इसके असर को विपक्ष नहीं भांप पाया और महिलाओं ने उसी तरह नरेंद्र मोदी के नाम पर वोट दिया, जिस तरह बिहार में महिलाओं ने नीतीश कुमार के नाम पर वोट दिया था. दूसरा, जनधन योजना ने गरीबों के बहुत बड़े हिस्से को प्रधानमंत्री मोदी की तरफ मोड़ दिया. इस आशा ने और मोड़ा कि अब इन्हीं खातों में 15 लाख रुपए आएंगे, जिसका वादा मोदी जी ने लोकसभा चुनाव के दौरान किया था. एक और अफवाह उत्तर प्रदेश में फैली थी कि इन खातों में वो 15 लाख आएंगे, जो गरीबों के पक्ष में प्रधानमंत्री ने नोटबंदी द्वारा अमीरों से छीने हैं. परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश पूरी तरह से प्रधानमंत्री के साथ गया, जिसकी कल्पना खुद प्रधानमंत्री या भारतीय जनता पार्टी ने नहीं की थी. विपक्ष तो एक तरीके से राजनैतिक कोमा में चला गया. अखिलेश यादव ने भी नीजवानों को लैपटॉप बांटे थे और अखिलेश यादव को इसका फायदा मिला. लेकिन लैपटॉप परिवार की जिंदगी पर असर नहीं डाल रहे थे, इसलिए बहुतों ने अपने लैपटॉप बेच दिए और बहुतों के धूल की वजह

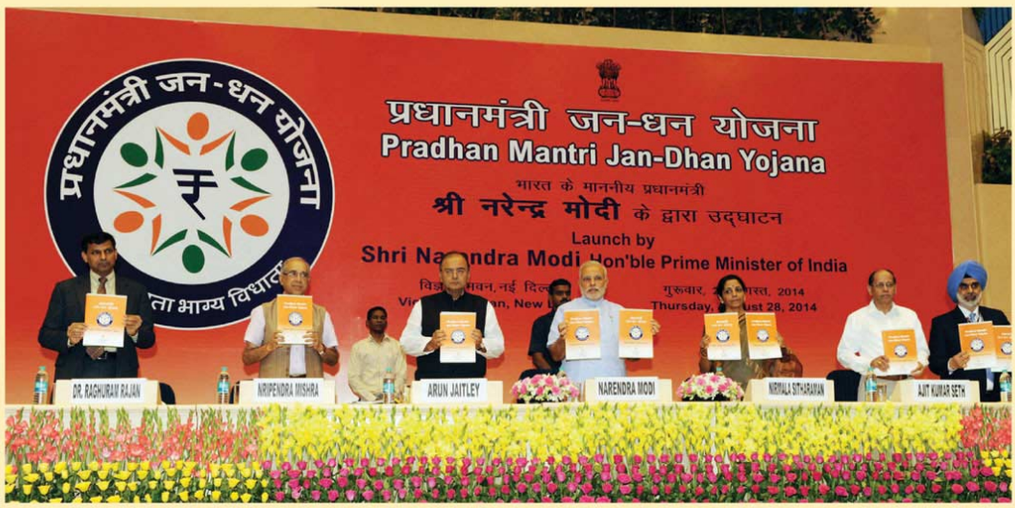

से खराब हो गए. लेकिन गैस के चूल्हे ने पूरे परिवार को एक नई दुनिया दी, जिसमें धुआं नहीं था, कंडे नहीं थे, लकड़ी नहीं थी, एक साफ वातावरण में खाना बनना था. ये सब परिवार के लोगों को चकित कर गया.

तीन साल में अर्थव्यवस्था कैसे पटरी पर आए, इसके बारे में सरकार कुछ खास नहीं कर पाई. प्रधानमंत्री से उम्मीद थी कि वे बड़े बैंक रिफॉर्म करेंगे. बिजनेस या व्यापार के पक्ष में माहौल बनाएंगे यानि ऐसा माहौल बनेगा जिसमें व्यापार छोटे से लेकर बड़े तक तेजी से बढ़ सके. लॉ इनफोर्समेंट एजेंसीज जैसे, ईडी, इन्कम टैक्स, पुलिस ये सब व्यापार के पक्ष में हों, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. उल्टे स्थिति बद से बदतर हो गई और ये सारी एजेंसियां इन दिनों व्यापारियों का ही बुरी तरह दोहन कर रही हैं. भारतीय जनता पार्टी के लोगों का साफ कहना है कि जितनी ताकत इन्कम टैक्स और ईडी को दी जा रही है या दी गई है और उसका जितना दुरुपयोग इन दिनों हो रहा है, वो डरावना है. उन्हें लगता है कि आगे इसका और भी दुरुपयोग होगा. मजे की बात ये है कि जनधन योजना दरअसल कांग्रेस के जमाने में बनी थी, जिसके जरिए कांग्रेस डायरेक्ट कैश ट्रांसफर गरीबों के खाते में करना चाह रही थी. वो चाह रही थी कि चाहे वो सब्सिडी हो, सहायता हो या किसी भी रूप में धन की सहायता हो, सब सीधे किसानों को मिले. ये योजना यूपीए ने बनाई थी, लेकिन इसका फायदा नरेंद्र मोदी को मिला.

करप्शन, परसेप्शन और मोदी सरकार

एनपीए ने भी बैंकों की रीढ़ तोड़ी और अर्थव्यवस्था को बहुत बड़ा धक्का दिया. सबसे बड़ा सवाल एनपीए से ये उठा कि क्या बैंकों की मिलीभगत से पिछले तीन सालों में बैंकों से रिश्ता रखने वाले बड़े व्यापारियों ने जान-बूझकर बड़े लोन लिए और उन्हें फिर एनपीए में कन्वर्ट किया. ये बहुत बड़ा सवाल है क्योंकि जिन लोगों के एनपीए की कहानी है, उनमें से बहुत बड़ी संख्या ऐसी है, जिनके पास नोटिस जा ही नहीं पाए. रेवेन्यू सेक्रेटरी, फाइनेंस सेक्रेटरी दोनों परेशान हो गए कि जिन लोगों ने लोन लिए, उनका नाम और पता क्यों नहीं मिल रहा है? उनका पता है ही नहीं कहीं? वही लोग जो इस देश को छोड़कर विदेशों में बसे हैं, उन्होंने बैंकों से मिलीभगत कर पैसे लिए और एनपीए में उस सारे धन को डाल दिया. अब बैंक जाने, सरकार जाने, ये पिछले तीन साल में बहुत हुआ. इसने इकोनॉमी को बहुत धक्का पहुंचाया. एनपीए की वजह से मनी सर्कुलेशन टूट गया. बहुत सारे लोगों का व्यापार, जिसे धंधा कहते हैं, बंद होने की कगार पर पहुंच गया. इस स्थिति को मौजूदा सरकार का वित्त मंत्रालय नहीं संभाल पाया. सरकार इस पूरी स्थिति का आकलन ही नहीं कर पाई कि अगर ये स्थिति पैदा होगी तो इसका सामना कैसे करेंगे? शायद देश की अर्थव्यवस्था को अगर सबसे ज्यादा धक्का किसी एक बिन्दु पर लगा है, तो वो एनपीए है.

नरेंद्र मोदी के तीन साल की उपलब्धि ये है कि राजनैतिक भ्रष्टाचार लगभग बंद होता दिखाई दिया. बंद हुआ कि नहीं, ये फिर कभी तय होगा, लेकिन आज धारणा ये बनी है कि नरेंद्र मोदी की सरकार में मंत्री भ्रष्टाचार नहीं कर रहे हैं. ये अलग बात है कि उन्हीं मंत्री के सूत्र ये बताते हैं कि अब भ्रष्टाचार सचिव या नौकरशाही के लेवल पर हो रहा है. राजनैतिक भ्रष्टाचार यानि मंत्रियों का भ्रष्टाचार, लेन-देन नहीं हो रहा है. इसमें कोई दो राय नहीं कि लोगों के बीच में इस धारणा का बनना कि राजनेता जो सत्ता में हैं, भ्रष्टाचार से दूर हैं. ये बड़ा परसेप्शन है और इसने प्रधानमंत्री को काफी साख दी है.

भारतीय जनता पार्टी की उत्तर प्रदेश में जीत की भूमिका उज्ज्वला योजना ने तैयार की, जिसमें लकड़ी के चूल्हे की जगह गैस का चूल्हा महिलाओं को मुफ्त दिया गया. इसके असर को विपक्ष नहीं भांप पाया और महिलाओं ने उसी तरह नरेंद्र मोदी के नाम पर वोट दिया, जिस तरह बिहार में महिलाओं ने नीतीश कुमार के नाम पर वोट दिया था. दूसरा, जनधन योजना ने गरीबों के बहुत बड़े हिस्से को प्रधानमंत्री मोदी की तरफ मोड़ दिया.

हरियाणा और राजस्थान की सरकारों के काम-काज ने दोनों राज्यों के निवासियों के मन में भारतीय जनता पार्टी को लेकर काफी शंकाएं पैदा की हैं. वे लोग अपने प्रदेश के काम-काज से प्रधानमंत्री के तीन साल के काम-काज को आंक रहे हैं. समय पर फैसला न करना, जिसमें शायद दोनों ही प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल हैं, भी इन प्रदेशों में भारतीय जनता पार्टी के विपक्ष में गया है. ये विफलताएं लोगों के सामने इसलिए नहीं आ पाईं, क्योंकि आप उत्तर प्रदेश में बहुत अच्छी तरह सफल हुए. सफल होना सारी विफलताओं को ढंक तो सकता है, लेकिन समाप्त नहीं कर सकता. उनके निशान, विफलता की आवाजें बनी रहती हैं और वो कब असर करेंगी, वो बस वक्त की बात होती है. उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने सब कुछ ठीक किया, ऐसा नहीं है. दरअसल समाजवादी पार्टी और कांग्रेस की भयंकर गलतियों की वजह से भारतीय जनता पार्टी जीत गई, लेकिन जीत के बाद वो इन गलतियों का मूल्यांकन नहीं कर पाई, जो गलतियां उसने इन चुनावों में की थी. सफलता का नशा बहुत खराब होता है और तीन साल में पहली बार भारतीय जनता पार्टी पर उत्तर प्रदेश चुनाव के बाद सफलता का नशा चढ़ा है. असम के बाद वो नशा नहीं चढ़ा था, लेकिन उत्तर प्रदेश के बाद पूरी भारतीय जनता पार्टी और भारतीय जनता पार्टी के जिम्मेदार लोग सफलता के नशे में झूम रहे हैं.

संवादहीनता और कटुता से विश्वास बहाली नहीं होगी

अगर तीन साल के शासन की सबसे बड़ी विफलता या स्वयं प्रधानमंत्री मोदी की विफलताओं को देखा जाए, तो देश में एक तनाव और आपस में गुस्से का वातावरण बना हुआ है. इस वातावरण की जड़ में सिर्फ और सिर्फ एक कारण है संवादहीनता. प्रधानमंत्री का संवाद किसी भी विपक्षी दल से नहीं है. राष्ट्रीय दल मानी जाने वाली कांग्रेस, जो संसद में सबसे बड़ा विपक्ष है, उसके साथ तो है ही नहीं. किसी के साथ भी प्रधानमंत्री का संवाद नहीं है और जब हम संवाद की बात करते हैं, तो विपक्षी दलों को छोड़ दीजिए, प्रधानमंत्री का संवाद अपने दल के लोगों से नहीं है. प्रधानमंत्री से कौन मंत्री मिल पाता है, कौन मंत्री बात कर पाता है, किस मंत्री को प्रधानमंत्री बुलाते हैं, ये उनका चुनाव होता है, लेकिन प्रधानमंत्री सामूहिक तौर पर मंत्रियों के साथ विचार-विमर्श नहीं करते. स्वयं भारतीय जनता पार्टी के बीच जितने भी संगठन हैं, चाहे वो अध्यक्ष से नीचे के पदाधिकारी हों, चाहे वो कार्यकारिणी हों, चाहे वो राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा हो, जितने भी अंग हैं, वो कोई भी प्रधानमंत्री से या स्वयं अध्यक्ष से संवाद में नहीं हैं. अब वहां फैसले नहीं होते, अब वहां फैसले सुनाए जाते हैं. जो पिछले अध्यक्ष के समय में नहीं हो पाया, वो मौजूदा अध्यक्ष के समय पार्टी में हो गया, जिससे भारतीय जनता पार्टी के सभी कार्यकर्ताओं के बीच एक अजीब सा ठहराव आ गया है. भारतीय जनता पार्टी के प्रमुख नेताओं का कहना है कि थोड़ी सी बातचीत से जिन बातों पर सहमति हो सकती है, बातचीत न करने की वजह से वो भी कटुता के बिन्दु बन गए हैं. भारतीय जनता पार्टी के कई वरिष्ठ नेताओं का कहना है कि राजनैतिक माहौल की कटुता देश के लिए अच्छी बात नहीं है. इस चीज को समाप्त करने के लिए सरकार को जो प्रयत्न करने चाहिए, सरकार वो प्रयत्न बिल्कुल ही नहीं कर रही है. पाकिस्तान का सवाल इनमें सबसे प्रमुख है. पाकिस्तान के साथ ऑल पार्टी मीटिंग बुलाना तनाव कम करने का तरीका नहीं है. ये सरकार ट्रैक टू पर भरोसा नहीं कर रही है.

(शेष पृष्ठ 3 पर)

चौथी दुनिया
हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 09 अंक 13
29 मई- 04 जून 2017

RNI-DELHIN/2009/30467

संपादक
संतोष भारतीय

एडिटर (इंवेस्टिगेशन)
प्रभात रंजन दीन

सहायक संपादक
सरोज कुमार सिंह (बिहार-झारखंड)
सरयू भवन, वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
हरीलाल स्वीट्स के निकट, पटना-800001
फोन: 0612 3211869, 09431421901

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63 नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा, गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.
संपादकीय 0120-6451999
6450888
विज्ञापन व प्रसार 022-65500786
+91-8451050786
+91-9266627379
फैक्स न. 0120-2544378

पृष्ठ-16++ (बिहार-झारखंड, उत्तर प्रदेश-उत्तराखंड)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुनः प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

सपनों का सौदागर

कश्मीर, पाकिस्तान और मोदी

पृष्ठ 2 का शेष

अगर ट्रैक टू पर संवाद हो, तो शायद पाकिस्तान से भी कटुता कम हो सकती है. दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कन्गेंसेस यानि आम सहमति की जो समझ होनी चाहिए, वो समझ इस सरकार में कहीं दिखाई नहीं देती. सुरक्षा, सीमा, पाकिस्तान और कश्मीर का सवाल, ये ऐसे सवाल हैं जिन पर देश के राजनैतिक दलों में आम सहमति बन सकती है, पर वो बनाने की इच्छा सरकार में दिखाई नहीं देती. यही भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेताओं के बीच चिंता का विषय है. भारतीय जनता पार्टी के कई नेताओं ने मुझे कहा कि मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस सहित अगर सात दलों के साथ ही सरकार आम सहमति बनाने की कोशिश करती है और सहमति बना ले तो सरकार का मोरल फैब्रिक बन जाएगा. इस देश में सरकार को काम करने में बहुत आसानी होगी और जनता के बीच विश्वास का बहुत अच्छा माहौल पैदा हो जाएगा.

पिछले तीन साल में भारतीय जनता पार्टी के संगठन की स्थिति भारतीय जनता पार्टी के ही संविधान के अनुसार गड़बड़ा गई है और वो उसके हिसाब से नहीं चल रही है. ठीक उसी तरह देश की सरकार राजनैतिक व्यक्तियों द्वारा नहीं चल रही है, मंत्रियों द्वारा नहीं चल रही है, बल्कि सचिवों के जरिए चल रही है. हर मंत्री डरा हुआ है कि उसका सचिव प्रधानमंत्री के साथ मीटिंग में उसके बारे में क्या बोल दे और लगभग हर मंत्री उस अपमानजनक स्थिति में है कि वो प्याज भी खा रहा है और जूते भी खा रहा है. वो मंत्री भी है और अपना दर्द भी प्रधानमंत्री से नहीं कह सकता, क्योंकि प्रधानमंत्री या अमित शाह किसी मंत्री का दर्द सुनने के मूड में नहीं हैं, मन:स्थिति में ही नहीं हैं. इसलिए वो अपने मंत्रालय में दरअसल चाय पीने के अलावा कोई महत्वपूर्ण काम नहीं कर रहे हैं. ये मेरा आरोप नहीं है, ये भारतीय जनता पार्टी के नेताओं में धारणा है. इसे भारत के लोकतांत्रिक स्वास्थ्य के लिए स्वयं भारतीय जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता अच्छा नहीं मानते. इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कि अमित शाह जी का यह दूसरा टर्म है. उन्होंने न अपने सारे ऑफिस बीयर्स बनाए और न ही कार्यकारिणी बनाई. उनके द्वारा प्रधानमंत्री की इच्छा आ जाती है और वो मान लिया जाता है कि वो पार्टी का फैसला है, न बात होती है, न बहस होती है, न विचार होता है. इलेक्शन कमिटी, पार्लियामेंट्री बोर्ड, ऑफिस बीयर्स, ये अब बस दिखाने के हिस्से रह गए हैं. इनमें फैसले नहीं होते. एक बड़े नेता ने मुझे कहा कि जब संगठन विंग भी एक व्यक्ति केंद्रित हो जाए, सरकार भी एक व्यक्ति केंद्रित हो जाए, तो यह व्यवस्था के लिए अच्छा नहीं है, स्वयं भारतीय जनता पार्टी के लिए अच्छा नहीं है.

मंत्री बड़ा या पीएमओ

मुझे भारतीय जनता पार्टी के बहुत बड़े नेता ने बिल्ट टू लास्ट किताब का उदाहरण दिया और कहा कि इस किताब को पढ़ना चाहिए. ये किताब कहती है कि जो संगठन व्यक्ति आधारित थे वे तो खत्म हो गए, लेकिन जो संगठन मूल्य आधारित थे या व्यवस्था आधारित थे, सिस्टम आधारित थे वे 100 साल तक चले. उनका कहना है कि भारतीय जनता पार्टी में पहले 100 साल चलने की क्षमता थी, लेकिन अब ये धीरे-धीरे व्यक्ति आधारित पार्टी होती जा रही है. इसलिए ये कितने दिन चलेगी इसका अनुमान लगाना बिल्ट टू लास्ट पुस्तक के फॉर्मूले के हिसाब से बहुत मुश्किल नहीं है.

दरअसल, मंत्रियों का दर्द सुनने वाला कोई है नहीं. बहुत सारे अच्छे मंत्री हैं, उनकी कल्पनाएं हैं, उनके मन में था कि वे मंत्री बने हैं तो देश के लिए ये-ये काम करेंगे. लेकिन जिस तरह की व्यवस्था प्रधानमंत्री ने बनाई है, ब्यूरोक्रेसी आधारित सचिवों के ऊपर, उससे वे अपने आत्मसम्मान का अपमान होते नहीं देखना चाहते. इस वजह से सारी व्यवस्था पीएमओ आधारित हो गई है. सारी फाइलें पीएमओ में हैं. इतने बड़े देश में क्या होना चाहिए, क्या नहीं होना चाहिए, वो चाहे मंत्री हों या सचिव हों, वो पीएमओ के चेहरे की तरफ देखते हैं. कोई अपनी जिम्मेदारी उठाना नहीं चाहता. जब पीएमओ से निर्देश आ जाते हैं, तब उसके ऊपर काम शुरू होता है. फैसले देरी से होते हैं. पीएमओ की भी एक क्षमता है. 48 घंटे का काम 24 घंटे में नहीं किया जा सकता, ये केंद्रीकरण बहुत सारी चीजों के ऊपर बैठा हुआ है और पीएमओ की वजह से बहुत सारे फैसले नहीं हो पा रहे हैं. गुजरात मॉडल से आज का मॉडल बिल्कुल विपरीत मॉडल है. गुजरात में कोई भी चीज चीफ मिनिस्टर सेंट्रिक नहीं थी, सीएमओ सेंट्रिक नहीं थी. हर मंत्री का अपना दायित्व था, उसे टार्गेट दे दिया था उस समय के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी ने. सब अपना-अपना काम कर रहे थे, नतीजा दे रहे थे और नरेन्द्र मोदी जी उनको मॉनिटर कर रहे थे. लेकिन जब वे प्रधानमंत्री बने हैं, तो उन्होंने बिल्कुल इससे उल्टा काम किया है. उन्होंने किसी को कोई टार्गेट नहीं दिया, किसी को कोई विजन नहीं दिया, प्रिंसिपल्स दिए, लेकिन उनके ऊपर काम करने का अधिकार राजनीतिक व्यक्तियों को नहीं बल्कि नौकरशाही के लोगों को दे दिया.

प्रधानमंत्री कार्यालय में, जिसे पीएमओ के रूप में जाना जाता है, नियुक्तियों में पीके मिश्रा का फैसला अंतिम होता है और बाकी चीजों में प्रधानमंत्री अपने कैबिनेट सेक्रेटरी नृपेंद्र मिश्रा की सलाह का बहुत सम्मान करते हैं. तीसरा सबसे बड़ा नाम अजीत डोभाल का है, जो हर चीज पर अपनी राय रखते हैं और उस राय का प्रधानमंत्री धार्मिक तौर तरीके से पालन करते हैं. यानि देश नरेंद्र मोदी, नृपेंद्र मिश्रा, पीके मिश्रा और अजीत डोभाल के कहने पर चल रहा है. मंत्रिमंडल में पहले ये माना जाता था कि अरुण जेटली सबसे ताकतवर मंत्री हैं और प्रधानमंत्री उससे बात करते हैं. लेकिन अब ऐसा लगता है कि अरुण जेटली का मंत्रालय भी उनका अपना मंत्रालय नहीं है, वे भी एक सामान्य मंत्री की तरह हैं और प्रधानमंत्री के अपने नौकरशाहों की टीम वित्त मंत्रालय भी चला रही है.

प्रधानमंत्री के नजदीकी मंत्रियों में से पीयूष गोयल और धर्मेंद्र प्रधान हैं. वित्त मंत्रालय प्रधानमंत्री मोदी स्वयं चलाते हैं और गृहमंत्रालय पूरे तौर पर अजीत डोभाल के कहने से चलता है. नितिन गडकरी में एनर्जी है और विदेश मंत्रालय बाहर के लोगों की सलाह से चल रहा है. रेलमंत्री सुरेश प्रभु को इनका समर्थन है, पर वे बहुत कुछ कर नहीं पा रहे हैं. वेंकैया नायडू को इस मंत्रिमंडल में जी हुजूर-हां हुजूर जैसा व्यक्ति माना जाता है. नरेंद्र मोदी जी ने एक और कमाल का काम किया है कि जितने महत्वपूर्ण मंत्रालय थे, उन सबका अवमूल्यन कर दिया है. जिन मंत्रालयों को पहले कैबिनेट मंत्री देखते थे, अब उन मंत्रालयों को राज्य मंत्री स्वतंत्र प्रभार देख रहे हैं. टेलीकॉम, कोल, पावर, ये सब राज्यमंत्रियों के अधीन हैं.

आज संघ का नेतृत्व और सरकार का नेतृत्व समकक्ष है. यानि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अमित शाह उनके हमउम्र हैं. इसलिए न वे इनको उस तरह का मार्गदर्शन देने की कोशिश करते हैं, ना नरेंद्र मोदी लेने की कोशिश करते हैं. संघ सरकार के बहुत सारे कामों से असहमत होते हुए भी उससे उलझ नहीं रहा. वहीं दूसरी तरफ प्रधानमंत्री मोदी शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में पूरे तौर पर संघ के दिशा निर्देशों का या संघ की राय का पालन कर रहे हैं.

संघ से कभी हां, कभी ना

संघ के साथ प्रधानमंत्री के रिश्ते विचित्र हैं. पहले संघ में वरिष्ठ लोग हुआ करते थे, तो वे पार्टी को सलाह देते थे, मार्गदर्शन देते थे. आज संघ का नेतृत्व और सरकार का नेतृत्व समकक्ष है. यानि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और अमित शाह उनके हमउम्र हैं. इसलिए न वे इनको उस तरह का मार्गदर्शन देने की कोशिश करते हैं, ना नरेंद्र मोदी लेने की कोशिश करते हैं. संघ सरकार के बहुत सारे कामों से असहमत होते हुए भी उससे उलझ नहीं रहा. वहीं दूसरी तरफ प्रधानमंत्री मोदी शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में पूरे तौर पर संघ के दिशा निर्देशों का या संघ की राय का पालन कर रहे हैं. क्योंकि संघ का इंट्रेस्ट शिक्षा और संस्कृति में है. दोनों मंत्रालयों में संघ के लोग नीचे से ऊपर तक हैं, चाहे वो राय देने का मसला हो या अमल करने का मसला हो. बाकी मंत्रालयों में संघ का हस्तक्षेप न के बराबर है, क्योंकि प्रधानमंत्री ने इसकी अनुमति नहीं दे रखी है. अब ये रिश्ता न बहुत अच्छा है, न बहुत बुरा है. इसके बावजूद संघ के अनुषांगिक संगठन अपनी नाराजगी समय-समय पर जाहिर करते रहते हैं, लेकिन उससे प्रधानमंत्री को कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि संघ उनके समर्थन में खड़ा नहीं होता. लेकिन उन अनुषांगिक संगठनों को अपनी बात कहने से संघ रोकता भी नहीं है.

कश्मीर और पाकिस्तान का मसला

देश में इस समय सबसे चिंता का विषय कश्मीर है. जब कश्मीर में चुनाव हुए, तो भारतीय जनता पार्टी और संघ के वरिष्ठ लोगों का मानना था कि भारतीय जनता पार्टी को बाहर रहकर पीडीपी का समर्थन करना चाहिए. लेकिन अमित शाह और राम माधव इस राय के थे कि नहीं उन्हें सरकार में शामिल होना चाहिए. भारतीय जनता पार्टी के संगठन के वरिष्ठ लोगों का कहना था कि ये कैसे हो सकता है कि कश्मीर का कोई हल निकले और उसका श्रेय भारतीय जनता पार्टी को मिले. पीडीपी ये कभी नहीं चाहेगी कि कश्मीर में किसी भी तरह के हल का श्रेय भारतीय जनता पार्टी को मिले. इसीलिए कश्मीर में अब भारतीय जनता पार्टी इस गठबंधन से बाहर आना चाहती है. लगभग ये फैसला हो चुका था कि कश्मीर में राष्ट्रपति शासन लगेगा, तो महबूबा मुफ्ती ने आकर कुछ समय और मांगा और शायद उन्हें दो या तीन महीने दिए गए हैं कि अगर वो कश्मीर में शांति स्थापित नहीं कर पाईं, तो भारतीय जनता पार्टी इस गठबंधन से बाहर आ जाएगी. संघ के कुछ प्रमुख लोगों का कहना है, जो कश्मीर मामलों के विशेषज्ञ हैं. उनका कहना है कि भारतीय जनता पार्टी अगर सरकार से बाहर रहती, तो कश्मीर का हल निकलवाना उसके लिए पीडीपी की सरकार से आसान होता. लेकिन अब वो खुद सरकार में शामिल हैं, इसलिए वो हल नहीं निकल सकता, स्थिति खराब होगी. इसलिए अंतत: भारतीय जनता पार्टी को इस गठबंधन से बाहर आना ही होगा.

सर्जिकल स्ट्राइक और इसके सिद्धांत को सरकार में कुछ मंत्री नरेंद्र मोदी की साख में असीमित बढ़ोतरी का एक बड़ा कारण मानते हैं. उनका कहना है कि नरेंद्र मोदी ने जिस तरह से लाइन ऑफ कंट्रोल को अपने देश के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए घोषित करके क्रॉस किया, उसने उनकी साख बहुत बढ़ाई. इसी बड़े नेता ने मुझसे कहा कि जब कारगिल का युद्ध हुआ था, तो हमारे सैनिकों की शहादत में बहुत ज्यादा बढ़ोतरी इसलिए भी हुई थी, क्योंकि हमने एयर पावर का इस्तेमाल नहीं किया था. उस समय अटल जी ने कहा था कि किसी भी कीमत पर हम एलओसी क्रॉस नहीं करेंगे. अगर हम एयर पावर का इस्तेमाल करते, तो विमानों को एलओसी क्रॉस करना पड़ता. लेकिन इस बार नरेंद्र मोदी ने खुली घोषणा की कि देश के आत्मसम्मान और सुरक्षा के लिए अगर आवश्यकता पड़ी, तो हम एलओसी को भी क्रॉस करेंगे. सर्जिकल स्ट्राइक करने के बाद नरेंद्र मोदी ने घोषणा की कि हमने एलओसी पार की और पाकिस्तान के सैनिकों को मारा. इसी बड़े नेता का ये विश्लेषण है कि कितने लोगों को मारा ये महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है ये घोषणा करना कि हमने एलओसी क्रॉस की और देश की सुरक्षा और आत्मसम्मान के लिए सर्जिकल स्ट्राइक किया. जो लोग कहते हैं कि पहले भी सर्जिकल स्ट्राइक होती थी, वो चोरी छुपे जाते थे. इस बार नरेंद्र मोदी ने घोषणा की और सर्जिकल स्ट्राइक की और ये जिम्मेदारी ली कि हमने लाइन ऑफ कंट्रोल पार की है. इनका कहना है कि अब तक इतिहास में दो ही देश ऐसे हैं, जिन्होंने घोषणा करके ये काम किया है. एक तो अमेरिका, जिसने अपनी सीमा से बहुत दूर दूसरे देशों में अपनी रक्षा के लिए हमले किए और दूसरा इजराइल, जो अपने देश की रक्षा के लिए हमला कर रहा है. दुनिया में तीसरा देश भारत बना, जिसने ये माना कि हमने एलओसी क्रॉस किया है. अंतरराष्ट्रीय मंच पर नरेंद्र मोदी की इस राजनीतिक साहस की बहुत प्रशंसा हुई. क्योंकि अब तक किसी ने भी ये नहीं कहा था कि देश की सुरक्षा और सम्मान के लिए मैंने लाइन ऑफ कंट्रोल पार की है और अगर आवश्यकता पड़ी, तो हम दोबारा पार करेंगे. इसे विश्व ने नरेंद्र मोदी के एक अप्रतिम राजनीतिक साहस की संज्ञा दी.

आगे का रास्ता...

नरेंद्र मोदी सरकार के तीन साल में, जमा के खाते में कम, घाटे वाले खाते में ज्यादा नंबर हैं. लेकिन उनकी कोई अहमियत इसलिए नहीं है, क्योंकि नरेंद्र मोदी ने राजनैतिक युद्ध में जो बढ़त हासिल की है, उस बढ़त ने हर गरीब के मन में नरेंद्र मोदी को अपने पक्ष का और अपने हितों का सबसे बड़ा रक्षक मान लिया है. नरेंद्र मोदी दक्षिण पंथ की विचारधारा पर आरूढ़ एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी भाषा समाजवादी और साम्यवादी है और उन्होंने साम्यवादी और समाजवादी या कहें वामपंथी समर्थक जनता को अपने साथ जोड़ लिया है. इसलिए उनका कोई भी वो वादा, जो पूरा नहीं हो पाया, लोगों के लिए चिंता का विषय नहीं है. ये विपक्ष के लिए चिंता का विषय हो सकता है, जो बिना रणनीति के या बिना तलवारबाजी की कला जाने तलवार चला रहा है. नरेंद्र मोदी ने लोकतंत्र को एक नई परिभाषा भी दी है. नरेंद्र मोदी ने मीडिया को भी इतना प्रभावित किया है कि मीडिया भी पत्रकारिता की नई परिभाषा लिख रहा है. बिना प्रधानमंत्री कार्यालय के चाहे, बिना नरेंद्र मोदी के इशारा किए, आज टेलीविजन इंडस्ट्री में या प्रिंट इंडस्ट्री में कुछ नहीं हो सकता. ऐसे पत्रकारों की संख्या अचानक बढ़ गई है, जो बेमिसाल नरेंद्र मोदी, बाहुबली नरेंद्र मोदी, अन्नदाता नरेंद्र मोदी, भगवान का अवतार नरेंद्र मोदी जैसे विशेषणों से भारत की जनता को नरेंद्र मोदी के व्यक्तित्व के उन पहलुओं का दर्शन करा रहे हैं, जो शायद स्वयं नरेंद्र मोदी भी नहीं जानते. नरेंद्र मोदी का मीडिया के सर के ऊपर बैताल की तरह घुस जाना उनकी सबसे बड़ी सफलता है. हम थोड़े दिनों में देखेंगे पत्रकारिता की नई परिभाषा, पत्रकारिता के नए शब्द, पत्रकारिता की नई शैली, बेमिसाल नरेंद्र मोदी और तीन साल बेमिसाल जैसे लोग अब पत्रकारिता के सम्पूर्ण चरित्र को बदलने का दावा करते हैं. अच्छा है अगर हम इन संकेतों को पहचानें, देखें और इसका विश्लेषण करने की कोशिश करें कि इनका परिणाम भविष्य में क्या होगा. ■

editor@chauthiduniya.com

तीन साल, देश का हाल

कृषि, रोज़गार कालाधन, नक़ली नोट और नोटबंदी

भारत में अक्टूबर 2016 से लेकर जनवरी 2017 के बीच 1.52 लाख अस्थायी नौकरियां और 46,000 पार्ट टाइम नौकरियां खत्म हो गईं. देश में नोटबंदी की मार सबसे अधिक असंगठित क्षेत्रों में काम कर रहे लोगों पर पड़ी. इससे छोटी औद्योगिक इकाइयों में काम कर रहे हजारों लोग बेरोजगार हो गए. एक प्रमुख बिजनेस अखबार के अनुसार, तिमाही रोजगार सर्वे में नोटबंदी का समय भी शामिल है. इस दौरान सबसे ज्यादा असर अस्थायी नौकरियों पर हुआ था.

शशि शेखर

काम नहीं हाथ में, विकास किसके साथ में!

आगामी तीन साल के दौरान भारत की आईटी कंपनियों में काम कर रहे हजारों लोगों की नौकरी खतरे में है. ऐसी रिपोर्ट्स आ रही हैं कि कुछ आईटी कंपनियों ने फरवरी से ही छंटनी शुरू कर दी है. कुछ लोगों को नोटिस दे दी गई है और जल्द ही छंटनी का काम शुरू हो जाएगा. गौरतलब है कि अमेरिका में डोनाल्ड ट्रंप ने अमेरिकियों के हितों को देखते हुए आईटी व अन्य कंपनियों में स्थानीय लोगों को नौकरी देने पर जोर दिया है. इसके लिए अमेरिका ने एच1बी वीजा नियमों पर सख्ती करनी शुरू कर दी है. इसके तहत अमेरिका स्थित आईटी कंपनियों में भारतीय कर्मचारियों की छंटनी कर अमेरिकी कर्मचारियों को भर्ती करने पर जोर दिया जा रहा है. बहरहाल, ये हाल तो संगठित क्षेत्र का है, लेकिन अगर हम असंगठित क्षेत्र की बात करें और खास कर नोटबंदी के प्रकाश में यह देखने की कोशिश करें कि इसका नौकरियों पर क्या असर पड़ा, तो तस्वीर काफी भयावह है. एक अध्ययन के मुताबिक, भारत में अक्टूबर 2016 से लेकर जनवरी 2017 के बीच 1.52 लाख अस्थायी नौकरियां और 46,000 पार्ट टाइम नौकरियां खत्म हो गईं. देश में नोटबंदी की मार सबसे अधिक असंगठित क्षेत्रों में काम कर रहे लोगों पर पड़ी. इससे छोटी औद्योगिक इकाइयों में काम कर रहे हजारों लोग बेरोजगार हो गए. एक प्रमुख बिजनेस अखबार के अनुसार, तिमाही रोजगार सर्वे में नोटबंदी का समय भी शामिल है. इस दौरान सबसे ज्यादा असर अस्थायी नौकरियों पर हुआ था. निर्माण क्षेत्र में लगभग 1.13 लाख नौकरियां खत्म हुई थीं, जबकि आईटी और बीपीओ में भी 20000 नौकरियां प्रभावित हुईं. इस दौरान निर्माण क्षेत्र में पार्ट टाइम नौकरी करने वाले सबसे ज्यादा प्रभावित हुए. सर्वेक्षण के मुताबिक जनवरी से मार्च 2017 के दौरान हुए सर्वे में निर्माण, ट्रेड, परिवहन, आईटी-बीपीओ, शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए. रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस तिमाही में निर्माण क्षेत्र में एक नकारात्मक बदलाव देखा गया है. हालांकि आवास और रेस्तरां क्षेत्रों में कोई बदलाव नहीं हुआ है. इस पूरे तिमाही में कुल मिलाकर श्रमिकों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है, जहां नियमित श्रमिकों की संख्या 1.39 लाख हुई है, तो वहीं ठेके पर काम करने वाले श्रमिकों की संख्या 1.24 लाख हुई. नरेंद्र मोदी सरकार के लिए रोजगार सृजन एक प्रमुख चुनौती है. मोदी ने लोक सभा चुनाव के दौरान हर साल लगभग 2 करोड़ नौकरियां देने का वादा किया था.

एक रिपोर्ट के अनुसार, 16.5 फीसदी से अधिक भारतीय श्रमिक नियमित वेतन अर्जित नहीं कर पाते हैं. इसी रिपोर्ट में एक अनुमान के अनुसार, चार भारतीय परिवारों में से तीन यानि 78 फीसदी के पास नियमित मजदूरी या वेतन का कोई जरिया नहीं है. आकस्मिक मजदूरों का अनुपात 30.9 फीसदी से ज्यादा है. जहां नौकरी की सुरक्षा की बात की जानी चाहिए थी, वहां भारत में अनुबंध और आकस्मिक काम में वृद्धि हो रही है. वर्ष 1999 से लेकर 2010 के बीच संगठित रोजगार में कुल अनुबंध श्रमिकों का हिस्सा 10.5 फीसदी से बढ़कर 25.6 फीसदी हो गया है. लेकिन इसी अवधि के दौरान सीधे कार्यरत कामगारों की हिस्सेदारी 68.3 फीसदी से घटकर 52.4 फीसदी हो गई है. यहां तक कि नियमित श्रमिकों को कम अवधि के अनुबंधों पर तेजी से नियुक्त किया गया, जिनमें बहुत कम या फिर नाममात्र की सामाजिक सुरक्षा थी. इस तरह संगठित श्रम बाजार में बढ़ती अनौपचारिकता ने औपचारिक और अनौपचारिक श्रम के बीच के अंतर को कम कर दिया है.

अनौपचारिक क्षेत्र, संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्र मिलाकर, भारत के सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 50 फीसदी रोजगार के अवसर उत्पन्न करता है. इससे देश के 90 फीसदी से अधिक लोगों को काम मिलता है. असंगठित क्षेत्र में औपचारिक और अनौपचारिक रोजगार के लिए कुल आंकड़ा 82.7 फीसदी है. 47.5 करोड़ के मौजूदा कार्यबल में, लगभग 40 करोड़, जो कि संयुक्त राज्य की आबादी की तुलना में काफी बड़ा है, को श्रम कानून व्यवस्था के तहत तय सुरक्षा का बहुत कम लाभ या बहुत कम औपचारिक हक मिलता है. रोजगार की अधिक संभावनाएं पैदा करने के सरकार के वादे के विपरीत वास्तविकता यह है कि रोजगार में अधिक अनिश्चितता की स्थिति बनी है, कम नौकरियां हैं और उससे भी कम सुरक्षा हो गई है. यहां तक कि सरकार ने खुद स्वीकार किया है, अर्थव्यवस्था सुधार की दर उच्च हुई है, रोजगार सृजन आशाजनक रहा है, हालांकि सभी क्षेत्रों में इसका असर नहीं दिख रहा है. 1999 से 2010 के दौरान, जब जीडीपी विकास दर प्रति वर्ष 7.52 फीसदी तक पहुंच गई, तब रोजगार वृद्धि केवल 1.5 फीसदी ही रही. लिखित नौकरी अनुबंध भारत में तेजी से खत्म हो रहे हैं. एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार करीब 93 फीसदी कैजुअल श्रमिकों और 68.4 फीसदी अनुबंध श्रमिकों के पास कोई लिखित अनुबंध नहीं है. यहां तक कि अधिक औपचारिक मजदूरी / वेतनभोगी कर्मचारियों के बीच, लगभग 66 फीसदी लोगों ने लिखित कार्य अनुबंध के बिना काम करने की बात कही है.

वादा तेरा वादा...

- विदेशों में जमा काला धन की जांच करवाएंगे. काला धन देश में वापस लाकर उसे विकास कार्यों में लगाएंगे.
- वाराणसी को देश की सांस्कृतिक राजधानी बनाकर उसे दुनिया के नक्शे पर चमकाया जाएगा.
- नदियों को जोड़ा जाएगा. तटीय क्षेत्रों का विकास, तटों को जोड़ने के लिए सागरमाला प्रोजेक्ट लाया जाएगा.
- देशभर में बुलेट ट्रेन चलाई जाएंगी.
- 100 नए शहर बसाए जाएंगे.
- करप्शन दूर करेंगे. इसके लिए नए तकनीक का इस्तेमाल किया जाएगा.
- महंगाई कम की जाएगी. ऐसी योजनाएं बनाई जाएंगी जिनसे महंगाई कम हो सके.
- सबको पक्का घर और हर घर में पानी.
- पटना, रांची, वाराणसी और कोलकाता को पूर्वोत्तर का केंद्र बनाकर पूर्वी राज्यों का विकास.
- गुजराती मछुआरों की पाकिस्तान से रक्षा की जाएगी.
- किसानों को 50 फीसदी अतिरिक्त एमएसपी
- हर साल दो करोड़ रोजगार

नकली नोट, काला धन और नोटबंदी

नोटबंदी का एक प्रमुख कारण नकली नोटों पर रोक लगाना और काला धन वापस लाना था. इस बात को खुद प्रधानमंत्री ने कहा था. सवाल है कि क्या नोटबंदी से ऐसा संभव हुआ? सरकारी आंकड़ों पर एक संस्था (इंडियास्पेंड) द्वारा किए गए एक विश्लेषण से पता चलता है कि भारत में 2015-16 में हर 250 नकली नोट में से केवल 16 का पता लगाया गया है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने यह भी कहा था कि पुराने नोटों को बंद करने का मुख्य कारण नकली नोटों पर रोक लगाना है, जिससे आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है. नोटबन्दी के वक्त 500 और 1000 रुपए के नोटों की मुद्रा संचलन में 86 फीसदी हिस्सेदारी थी. भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, 2015-16 में 90.26 बिलियन भारतीय मुद्राएं चलन में थीं. इनमें से 0.63 मिलियन नोट (यानि 0.0007 फीसदी) से अधिक नकली नहीं पाए गए थे. 2015-16 में इन नकली नोटों के मूल्य 29.64 करोड़ रुपए थे, जो चलन में 16.41 लाख करोड़ रुपए का 0.0018 फीसदी है. इन आंकड़ों में पुलिस और अन्य प्रवर्तन एजेंसियों द्वारा जब्त नोट शामिल नहीं हैं. 18 नवंबर, 2016 को लोक सभा में राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा पेश किए गए आंकड़ों के अनुसार, 2015 में 0.88 मिलियन नकली नोट जब्त किए गए, जिसका मूल्य 43.8 करोड़ रुपए था. आंकड़ों से पता चलता है कि 30 सितंबर, 2016 तक 27.8 करोड़ रुपए के नकली नोट जब्त किए गए. भारतीय सांख्यिकी संस्थान और राष्ट्रीय जांच एजेंसी द्वारा वर्ष 2015 में किए गए संयुक्त अध्ययन के अनुसार किसी भी समय चलन में नकली मुद्राओं का मूल्य 400 करोड़ रुपए होता है. हर 10 लाख नोट में 250 नोट नकली होते हैं. अध्ययन में अनुमान लगाया गया है कि करीब 70 करोड़ रुपए मूल्य के नकली नोट हर साल चलन में आते हैं. इसमें से केवल एक तिहाई की पहचान ही एजेंसियों द्वारा हो पाती है. नकली नोटों का पता मुख्य रूप से वाणिज्यिक बैंकों द्वारा लगाया जाता है. सवाल है कि नोटबन्दी के दौरान कितने प्रतिशत नकली नोट का पता लगाया गया, ये आंकड़ा सार्वजनिक क्यों नहीं किया जा रहा है?

दूसरा मुद्दा है काला धन का. ऐसा माना जाता है कि ब्लैक इकोनॉमी यानि काली अर्थव्यवस्था में नगद का हिस्सा 3 से 7 फीसदी के बीच होता है. साल 2012 में, तत्कालीन वित्त मंत्री प्रणब मुखर्जी ने भारत के काला धन पर एक श्वेत पत्र जारी किया था. पत्र से पता चलता है कि अज्ञात आय का नगद घटक 3.7 फीसदी से 7.4 फीसदी के बीच है. ये आंकड़े केंद्र के प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा दिए गए रिपोर्ट पर आधारित थे. श्वेत पत्र के अनुसार, वित्त वर्ष 2011-12 में, 9289 करोड़ रुपए की स्वीकृत अघोषित आय में से 499 करोड़ रुपए (5.4 फीसदी) से अधिक नगद में नहीं पाया गया था. 1 अप्रैल से 31 अक्टूबर, 2016 के बीच आयकर जांच से पता चलता है कि कालाधन धारकों ने 7700 करोड़ रुपए के मूल्य की बेहिसाब संपत्ति होने की बात स्वीकार की है. इसमें से 408 करोड़ रुपए या 5 फीसदी नगदी थी. आंकड़ों से पता चलता है कि बाकी पैसे व्यापार, स्टॉक, अचल संपत्ति और बेनामी बैंक खातों में निवेश किए गए. वर्ष 2015-16 में जब सबसे ज्यादा काला धन पता चलने की रिपोर्ट हुई है, तब उसमें नगदी की हिस्सेदारी 6 फीसदी थी. इधर, नोटबंदी के बाद अब यूनाइटेड नेशन यानि संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट कहती है कि भारत में ब्लैक मनी पर रोक लगाने के लिए केवल नोटबंदी से ही काम नहीं चलेगा. यूनाइटेड नेशन की इकोनॉमिक एंड सोशल सर्वे ऑफ एशिया एंड पैसिफिक की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में अनुमानित ब्लैक मनी देश की जीडीपी की 20 से 25 फीसदी के आस-पास हो सकती है. इनमें वैल्यू के लिहाज से कैश का हिस्सा सिर्फ 10 फीसदी के आस-पास ही है. ऐसे में नोटबंदी ब्लैक मनी पर पूरी तरह से नियंत्रण करने का उपाय नहीं हो सकती है. इसके लिए सरकार को दूसरे उपायों पर विचार करना होगा. संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि नोटबंदी सभी तरह की ब्लैक मनी पर नियंत्रण करने के लिए काफी साबित नहीं हुई. कैश के अलावा दूसरी तरह की संपत्ति के रूप में भी लोगों के पास अघोषित संपत्ति है. यूएन की रिपोर्ट के मुताबिक प्रॉपर्टी के पंजीकरण की प्रक्रिया में बदलाव करने की जरूरत है, जिससे कि प्रॉपर्टी में निवेश को लेकर पारदर्शिता आए. वहीं, पारदर्शिता के लिए सभी तरह के टैक्स, आय घोषणा स्कीम और करदाता पहचान संख्या के माध्यम से ऊंचे मूल्य के लेन-देन पर नजर रखना शामिल है.

किसानों को न ऋण मिल रहा न बिक रही उपज

मन्दसौर जिले के सैकड़ों किसान अब भी नोटबंदी की चपेट में हैं. प्रदेश के मालवा इलाके में इसका असर अब भी देखने को मिल रहा है. दरअसल यहां के कई किसान हर साल सहकारी समितियों के माध्यम से फसलों का लोन लेते हैं. पिछले साल का लिया गया लोन तमाम किसानों ने जमा भी करा दिया, लेकिन कैश की कमी के चलते सहकारी समितियां उन्हें दोबारा लोन नहीं दे पा रही हैं. मध्य प्रदेश के सहकारी बैंकों की ओर से किसानों को दिए जाने वाले ऋण में सालाना 2500 करोड़ रुपए की भारी कमी आई है. 2015-16 में जहां इन बैंकों ने 13,900 करोड़ रुपए का ऋण बांटा था, वहीं गत वित्त वर्ष में यह राशि घटकर 11,400 करोड़ रुपए रह गई. हालांकि इस वर्ष 15,000 करोड़ रुपए के ऋण वितरण का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन नोटबंदी और समय पर नाबार्ड की सीमा नहीं मिल पाने के कारण लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सका. बीते वित्त वर्ष में सहकारी बैंकों ने खरीफ सीजन में लगभग 8000 करोड़ रुपए और रबी सीजन में 3400 करोड़ रुपए का कर्ज बांटा, जबकि वर्ष 2015-16 में यह आंकड़ा क्रमशः 9400 करोड़ रुपए और 3500 करोड़ रुपए था. उधर रबी के सीजन में नोटबंदी ने

शेष पृष्ठ 5 पर

कृषि, रोज़गार, कालाधन, नक़ली नोट और नोटबंदी

पृष्ठ 4 का शेष

ऋण वितरण पर असर डाला. प्रदेश भर के किसानों को नोटबंदी के कारण ऋण लेने में दिक्कत हुई. जब तक नोटबंदी खत्म हुई, तब तक किसानों की जरूरत भी समाप्त हो चुकी थी.

बहरहाल, नोटबंदी के दौरान किसानों की हालत ये थी कि उन्होंने अपने खेतों की पैदावार मवेशियों को खिला दी, क्योंकि फायदा और लागत तो दूर, उसे बेचने पर मिलने वाले पैसों से बाजार तक माल पहुंचाने का खर्च भी नहीं निकल सकता था. नोटबंदी के बाद सब्जियों की कीमतों में कमी देखी गई, किसान मजबूरी में औने-पौने दामों में अपनी सब्जियां, फल और दाल बेचने को मजबूर हुए. एमएसपी में कमी देखने को मिली और अब भी एमएसपी नहीं मिल पा रही है. लगातार दो साल के सूखे के बाद किसान हालात से उबर ही रहे थे कि उन्हें नोटबंदी की मार झेलनी पड़ गई. नोटबंदी के पहले 50 दिनों की बात करें, तो इस दौरान किसानों की आय में 50-60 फीसदी की कमी हुई है. अरहर दाल उगाने वाले किसानों को 5050 रुपए एमएसपी की तुलना में सिर्फ 3 से साढ़े तीन हजार रुपए प्रति क्विंटल दाल बेचनी पड़ी.

रबी फसल की रिकॉर्ड बुआई का हवाला देते हुए कृषि मंत्री राधामोहन सिंह ने कहा था कि पिछले साल 438.90 लाख हेक्टेयर के मुकाबले इस साल 472.43 लाख हेक्टेयर में रबी की बुआई हुई है, जो कि पिछले साल से 7.64 फीसदी अधिक है. सरकार ने सिर्फ इस आंकड़े के आधार पर यह साबित करने की कोशिश की कि खेती-किसानी पर नोटबंदी का कोई असर नहीं पड़ा. जबकि सच्चाई ये है कि किसान बुआई से पहले ही बीज और खाद के लिए पैसों की व्यवस्था कर लेते हैं. इस बार भी यही हुआ था. किसानों ने पहले से व्यवस्थित संसाधनों के जरिए खेतों में बुआई कर ली थी. लेकिन समस्या अब सामने आ रही है, जब किसानों की फसल तैयार हो गई है और उन्हें अपनी फसल का कोई खरीदार नहीं मिल रहा है. सरकारी स्तर पर भी देखें तो गेहूं क्रय का काम बहुत ही धीमी गति से चल रहा है. उदाहरण के लिए यूपी सरकार ने इस साल घोषणा की थी कि वह किसानों से 80 लाख टन गेहूं खरीदेगी. लेकिन, उत्तर प्रदेश सरकार अभी तक मात्र 16 लाख टन ही गेहूं खरीद पाई है.

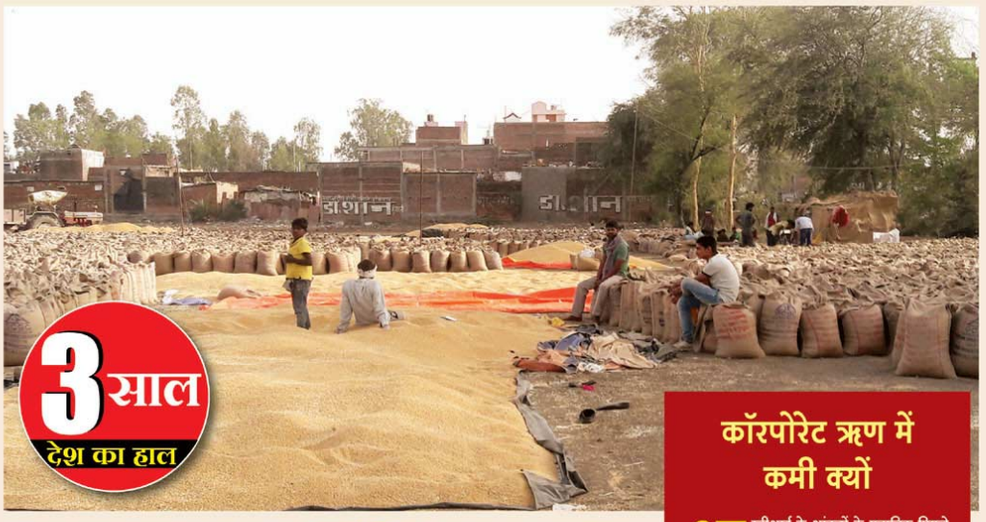

मैनुफैक्चरिंग सेक्टर बुरी तरह प्रभावित

मेक इन इंडिया जैसे लुभावने नारों के बाद भी 2015-16 के दौरान तैयार वस्तुओं की बिक्री में 3.7 फीसदी की गिरावट दर्ज हुई है. आने वाले समय में इस क्षेत्र में कर्मचारियों की और छंटनी व ऋण के मामले में

डिफॉल्टर होने की आशंका देखी जा सकती है. वैश्विक मंदी और मांग की कमी के कारण, नोटबंदी के पहले ही विनिर्मित वस्तुओं की बिक्री में गिरावट हो रही थी, जिसका असर वस्त्रों से लेकर चमड़े और स्टील के क्षेत्रों पर भी हुआ है. परिणामस्वरूप, सितंबर 2016 तक छह महीने में इंजीनियरिंग कंपनी लार्सन एंड टुब्रो ने करीब 14,000 कर्मचारियों की छंटनी की है.

नोटबंदी के पहले 34 दिनों में, सूक्ष्म और लघु उद्योगों को राजस्व में 35 फीसदी और 50 फीसदी के नुकसान का सामना करना पड़ा है. वैश्विक उथल-पुथल भी निर्माताओं के लिए समस्याओं का कारण बना है. पिछले तीन सालों से वैश्विक बाजार में अनिश्चितता की स्थिति बनी है. विदेशी मुद्रा बाजार में उतार-चढ़ाव रहा है और इससे बिक्री में कमी हुई है. इसका लाभ मार्जिन पर नकारात्मक असर पड़ा है. भारतीय रिजर्व बैंक ने यह भी कहा कि भारतीय निर्माताओं पर 6.9 लाख करोड़ रुपए का सामूहिक कर्ज है. पिछले चार वर्षों में 1707 विनिर्माण कंपनियों का अध्ययन कर भारतीय रिजर्व बैंक ने बताया कि कमजोर कंपनियों की संख्या जिनकी ऋण-इक्विटी अनुपात 200 फीसदी से अधिक है, 2012-13 में 215 से बढ़कर 2015-16 में 284 हो गई है, यानि इसमें 32 फीसदी की वृद्धि हुई है. उच्च ऋण-इक्विटी अनुपात का मतलब विकास के लिए कंपनियों का आक्रामक तरीके से उधार के पैसे का उपयोग करना होता है, जिसमें डिफॉल्ट का उच्च जोखिम भी बना रहता है.

अर्थशास्त्रियों का मानना है कि बुनियादी ढांचे में अधिक निवेश और अर्थव्यवस्था का दोबारा मुद्रीकरण व अन्य कदम उठाकर नोटबंदी से हुए नुकसान की भरपाई करने के लिए सरकार को प्रयास करना चाहिए. सरकार को जल्दी से जल्दी वित्तीय प्रणाली के मुद्रीकरण करने की जरूरत है, जिसमें विनिर्माण क्षेत्र के कुछ हिस्से भी शामिल हैं.

आंकड़ों के मकड़जाल में विकास

8 नवंबर को जब प्रधानमंत्री ने नोटबंदी का ऐलान किया, तब ये माना गया कि अर्थव्यवस्था पर इसका असर काफ़ी व्यापक हो सकता है. लेकिन भारत सरकार के आंकड़ों से यह पता चलता है कि गिरावट वैसी नहीं है, जिसकी कल्पना आर्थिक मामलों के जानकारों ने की थी. सरकार द्वारा जारी ताज़ा आंकड़ों के मुताबिक साल 2016-17 की तीसरी तिमाही में, यानि अक्टूबर से दिसंबर 2016 के बीच विकास दर 7 फ़ीसदी रहने की उम्मीद है. इस पूरे साल की अनुमानित विकास दर 7.1 फ़ीसदी बताई जा रही है, जबकि साल 2015-16 में ये दर 7.9 फीसदी थी.

ख़ास बात ये है कि खेती में बढ़ोतरी अच्छी ख़ासी देखी जा रही है, हालांकि माइनिंग और मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में गिरावट है. 2016-17 में खेती की अनुमानित विकास दर बीते साल के 0.8 फीसदी से बढ़कर 4.4 फीसदी हो गई है. हालांकि मैन्युफैक्चरिंग में 10.6 फीसदी का विकास दर इस साल 7.7 फीसदी रहने का अनुमान है. कंस्ट्रक्शन के क्षेत्र में भी मामूली बढ़ोतरी है, यह 2.8 फीसदी से बढ़कर 3.1 फीसदी हुई है.

इधर, फिक्की द्वारा मार्च और अप्रैल 2017 में किए गए सर्वेक्षण के बाद अनुमान लगाया गया है कि देश के सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर वित्त वर्ष 2017-18 में लगभग 7.4 फीसदी रहेगी. इसका अधिकतम स्तर 7.6 फीसदी और न्यूनतम स्तर 7 फीसदी रह सकता है. फिक्की के आर्थिक परिदृश्य सर्वेक्षण में कहा गया है कि वित्त वर्ष 2017-18 के दौरान कृषि क्षेत्र की वृद्धि दर 3.5 फीसदी रहेगी, साथ ही उद्योग और सेवा क्षेत्र में सुधार से भी जीडीपी को समर्थन मिलेगा. सर्वेक्षण के नतीजों के मुताबिक, वित्त वर्ष 2017-18 के दौरान उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) की दर 4.8 फीसदी रहने का अनुमान है, जिसकी अधिकतम दर 5.3 फीसदी और न्यूनतम दर चार फीसदी रहने का अनुमान लगाया गया है. अर्थशास्त्रियों का मानना है कि भारत को सुधारों पर ध्यान देने की जरूरत है. देश में निवेश के माहौल को सुधारने की जरूरत है, जो अभी पटरी से उतरी हुई दिख रही है.

कॉरपोरेट ऋण में कमी क्यों

आरबीआई के आंकड़ों के मुताबिक पिछले छह वर्षों के दौरान एनपीए में वृद्धि और सुस्त आर्थिक विकास से कॉर्पोरेट उधार में 600 फीसदी की गिरावट आई है. ऑटोमोबाइल कंपनियों द्वारा डीलरों को गाड़ी वितरण करने में काफी परेशानी हो रही है. पिछले छह वर्षों में घर की बिक्री सबसे निचले स्तर पर है. जनवरी, 2017 को रिजर्व बैंक द्वारा जारी किए गए आंकड़ों का हवाला देते हुए एक रिपोर्ट कहती है कि वर्ष 2016-17 के पहले आठ महीनों में बुनियादी ढांचे वाली कंपनियों के लिए बैंक ऋण में लगातार गिरावट आई है. सवाल है कि 12 लाख करोड़ से भी ज्यादा जब बैंकों में वापस आ गए हैं, तब भी कॉर्पोरेट क्षेत्र को उधार देने में मुश्किलें क्यों आ रही हैं. विनिर्माण क्षेत्र के लिए शुद्ध ऋण में 77 फीसदी की गिरावट हुई है. एनपीए में वृद्धि कॉर्पोरेट उधारी में गिरावट का एक कारण है. उधर, आर्थिक मंदी और मौजूदा औद्योगिक क्षमता में कमी की वजह से मांग में गिरावट से ऋण देने में गिरावट आई है. नोटबंदी ने लघु उद्योगों के संकट को और बढ़ा दिया है. अखिल भारतीय निर्माता संगठन द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, नोटबंदी के पहले 34 दिनों में छोटे एवं लघु उद्योगों में 35 फीसदी नौकरियों का नुकसान हुआ है और राजस्व में 50 फीसदी की गिरावट हुई है. ■

तो इसलिए हुई थी नोटबंदी

कालाधन का पता कैसे लगाया जाए, यह सवाल केंद्र सरकार के सामने सुरसा के मुंह की तरह खड़ी थी, इसलिए सरकार ने इन्कम डिस्क्लोज़र स्कीम लॉन्च किया था. लेकिन, इस योजना के तहत कालाधन का पता लगाने की कोशिशों के दौरान यह पता चला कि खुद देश के विभिन्न बैंकों के माध्यम से ही बहुत बड़ी मात्रा में कालेधन का ट्रांजेक्शन हो रहा है. कई सारे बैंक पैन नंबर दर्ज किए बगैर करोड़ों और अरबों रुपये का लेन-देन कर रहे हैं. ऐसे सात लाख ट्रांजेक्शन से जुड़े लोगों को सरकार की तरफ से नोटिस भेजा गया. लेकिन दुर्भाग्य से इनमें से 6 लाख 90 हजार नोटिस एड्रेसी नॉट फाउंड यानि पता नहीं मिला, लिख कर वापस आ गईं. इसका अर्थ ये हुआ कि इन ट्रांजेक्शंस में जो पते बताए गए थे, उन पतों पर कोई रहने वाला कोई नहीं था यानि ये सभी पते फर्जी थे. सवाल है कि ऐसी स्थिति में सरकार क्या कदम उठाए? किन लोगों के खिलाफ कार्रवाई की जाए? गौरतलब है कि 90 लाख बैंक ट्रांजेक्शन पैन नंबर के बिना किए गए थे. इनमें 14 लाख हाई वैल्यू ट्रांजेक्शन हैं. इनमें सात लाख बड़े ट्रांजेक्शन हाई-रिस्क वाले हैं. इन्हीं सात लाख ट्रांजेक्शन के सिलसिले में नोटिस जारी हुई थी और पता नहीं मिलने पर वापस आ गई थी.

जब कालाधन पकड़ने की सभी योजनाएं फेल हो गईं, तब ये सवाल उठा कि आखिर इसका समाधान क्या होगा? वापस लौट कर आई नोटिसों का आयकर विभाग क्या करे, ये भी एक बड़ा सवाल था? कैसे कालाधन के इन चोरों के खिलाफ कार्रवाई हो? इतनी अधिक संख्या में लोगों से पूछताछ कैसे की जाए? क्या इसके लिए बैंकों के खिलाफ कार्रवाई भी की जाए? आर्थिक मामलों के कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि यदि तब इतने बड़े पैमाने पर बैंकों के खिलाफ कार्रवाई की जाती तो पूरे बैंकिंग प्रणाली के ध्वस्त होने का खतरा था. सरकार इतनी बड़ी जोखिम नहीं ले सकती थी. जाहिर है, इसका एकमात्र रास्ता जो सरकार को सूझा, वह नोटबंदी जैसे कदम उठाना ही था. नोटबंदी ही एक ऐसी प्रक्रिया थी, जिसके जरिए उक्त अवैध ट्रांजेक्शन पर वार किया जा सकता था. हालांकि, वो वार कितना सफल हुआ, कितना असफल, ये कहना तब तक मुश्किल है, जब तक आरबीआई या सरकार की तरफ से कोई ठोस आंकड़ा पेश नहीं किया जाता है. लेकिन, नोटबंदी का एक तात्कालिक कारण ये उक्त अवैध ट्रांजेक्शन भी थे. ■

feedback@chauthiduniya.com

राजग सरकार में बिगड़ा विदेश नीति और रक्षा नीति का संतुलन

लचर रक्षा नीति का 'राष्ट्रवाद'

3 साल देश का हाल

प्रभात रंजन दीन

रक्षा मोर्चे पर नाकारा, पर विदेश भ्रमण के मोर्चे पर अव्वल रहे मोदी

रक्षा बजट में अनाप-शनाप कटौती, विदेश यात्राओं पर अनाप-शनाप ख़र्च

विदेश नीति और रक्षा नीति एक दूसरे की पूरक और संवर्धक होती है. दोनों अन्योन्याश्रित हैं. जबसे देश आजाद हुआ है, केंद्र की सरकारों ने विदेश नीति और रक्षा नीति में किस्म-किस्म के प्रयोग और दुष्प्रयोग किए, जिसका नतीजा कश्मीर के स्थायी उद्वेलन से लेकर भारत-पाकिस्तान के साथ सिलसिलेवार युद्ध और ऐतिहासिक पराजय के साथ भारत-चीन युद्ध हमारे माथे पर चिपक गया. आजादी के बाद से लेकर अबतक केंद्र की सत्ता पर सबसे अधिक समय कांग्रेस का कब्जा रहा है, इसलिए विदेश और रक्षा के मोर्चे पर हमारी सफलता और नाकामियों का दारोमदार भी कांग्रेस के मत्थे ही अधिक जाता है. वर्ष 2014 में केंद्र में भारतीय जनता पार्टी की सरकार आई. पूर्ण बहुमत के साथ प्रधानमंत्री बने नरेंद्र मोदी ने विदेश नीति और रक्षा नीति को प्राथमिकता पर रखने की घोषणा की और कांग्रेस के अब तक के 'लीक' से अलग रास्ता गढ़ने की कोशिश की. इन तीन वर्षों की तुलना पिछले करीब सात दशक के शासनकालों से नहीं की जा सकती. लेकिन इन तीन वर्षों को अलग रख कर उसकी समीक्षा तो की ही जा सकती है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने तीन साल के कार्यकाल में विदेश नीति को तरजीह दी, लेकिन रक्षा नीति पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया. ऐसा नहीं है कि मोदी की विदेश यात्राओं के कुछ सकारात्मक परिणाम सामने नहीं आए, लेकिन मोदी की विदेश यात्राओं को लेकर जिस तरह का प्रचार-प्रसार किया गया, जिस तरह के प्रायोजित प्रहसन खेले गए, जिस तरह की हवा बांधी गई, उस अनुरूप परिणाम भी तो आना चाहिए था न! ऐसा तो कुछ भी नहीं हुआ! मोदी की विदेश यात्राओं से देश की रक्षा से जुड़ा पक्ष मजबूत होना चाहिए था, लेकिन ऐसा बिल्कुल नहीं हुआ. उल्टा रक्षा क्षेत्र में कमजोरियां और गहराती चली गईं. सेना पर दबाव अप्रत्याशित रूप से बढ़ता चला जा रहा है. रक्षा क्षेत्र में बजट की कटौती मोदी सरकार की सबसे हास्याप्रद और निंदास्पद नीति रही. ऐसे समय में जब पाकिस्तान और चीन की तरफ से रक्षा चुनौतियां लगातार बढ़ती जा रही हों, वो अपना रक्षा बजट लगातार बढ़ा रहे हों, हम अपने रक्षा बजट में कटौती कर दें, यह विचित्र है. यही भाजपा के राष्ट्रवाद के ढोल की असली पोल है. रक्षा नीति की उपेक्षा कर विदेश यात्राओं के फिर कोई मायने-मतलब नहीं रह जाते. प्रधानमंत्री बनने के बाद नरेंद्र मोदी ने 56 विदेश यात्राएं कीं. लेकिन इन विदेश यात्राओं से देश को हासिल क्या हुआ? यह बड़ा प्रश्न है. पाकिस्तान को अलग-थलग करने की रणनीति में थोड़ी बहुत कामयाबी मिली, लेकिन उसका कोई व्यापक असर नहीं दिखा. काफी मशक्कत करने के बावजूद भारत पाकिस्तान पोषित आतंकी मसूद अजहर को संयुक्त राष्ट्र से आतंकवादी घोषित नहीं करा पाया. संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की सदस्यता का मसला घालमेल में ही चला गया. न्यूक्लियर सप्लायर ग्रुप में भी हम शरीक नहीं हो पाए. हमारी विदेश नीति का प्रभाव चीन पर कुछ नहीं पड़ा, उल्टा चीन की तरफ से दादागीरी और बढ़ती गई. सिल्क रूट को लेकर चीन ने भारत के पड़ोसी देशों, खास कर नेपाल को अपनी तरफ करने में कामयाबी पाई. हम ईरान से सम्बंध सहज बनाने की तकरीरें देते रह गए और ईरान ने भारत के पूर्व नौसैनिक अधिकारी कुलभूषण जाधव को पकड़ कर पाकिस्तान के हवाले कर दिया. पाकिस्तान ने जाधव को फांसी की सजा दे दी. भारत अपनी विदेश नीति में इतना ही कामयाब हो पाया कि उसने अंतरराष्ट्रीय कोर्ट से जाधव की फांसी की सजा पर तात्कालिक रोक लगवा ली. हालांकि, यह जाधव की फांसी रोकने की कोई गारंटी नहीं है. तो हमने अपनी विदेश नीतियों में बदलाव का क्या पुरस्कार पाया? क्या मोदी की विदेश यात्राओं से ही काम चल गया? अपने तीन साल के कार्यकाल में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी चार बार अमेरिका, नेपाल, जापान, रूस और अफगानिस्तान के दौरे पर गए. मोदी को इन दौरों के नफा-नुकसान पर सार्वजनिक चर्चा करनी चाहिए. केंद्र की सत्ता संभालते ही सबसे पहले जून 2014 में मोदी भूटान गए थे. उसके बाद अमेरिका, नेपाल, जापान, रूस और अफगानिस्तान की चार-चार बार यात्राएं कीं. दो बार चीन के दौरे पर गए. मोदी ने मंगोलिया की भी यात्रा की. मंगोलिया की यात्रा करने वाले मोदी पहले भारतीय प्रधानमंत्री हैं. प्रधानमंत्री मार्च 2015 में सेशल्स की यात्रा पर गए. अगस्त 2015 में मोदी संयुक्त अरब अमीरात की यात्रा पर गए. मोदी ने अप्रैल 2015 में कनाडा और नवंबर 2015 में ब्रिटेन और तुर्की का दौरा किया. इसके बाद ही मोदी ने मलेशिया और सिंगापुर की यात्रा की. प्रधानमंत्री ने इसके पहले नवंबर 2014 में ऑस्ट्रेलिया की यात्रा की थी. मोदी की विदेश यात्राओं में बांग्लादेश, मॉरीशस, फ्रांस, जर्मनी, दक्षिण कोरिया, उज्बेकिस्तानसन, कजाखस्तान, पाकिस्तान, संयुक्त अरब अमीरात, ब्राजील, म्यांसमार, फीजी और श्रीलंका भी शामिल है. मोदी की इन विदेश यात्राओं के फलाफल को लेकर सवाल उठते रहे हैं, लेकिन साथ ही लोग यह भी मानते हैं कि मोदी की विदेश यात्राएं जरूरी भी थीं. अंतरराष्ट्रीय संबंधों के समीक्षक यह भी मानते हैं कि मोदी की यात्राओं से वैश्विक समुदाय के बीच देश का कद ऊंचा हुआ है और प्रवासी भारतीयों को बल मिला है. केंद्र सरकार का आधिकारिक दावा है कि प्रधानमंत्री की यात्राओं के कारण विदेशी निवेश में बढ़ोतरी हुई है. लेकिन इन यात्राओं का असर हमारी रक्षा व्यवस्था पर क्या पड़ा? इस सवाल का संतोषजनक जवाब देने से केंद्र सरकार लगातार कन्नी काट रही है. मोदी कैबिनेट के समझदार वित्त मंत्री अरुण जेटली ने रक्षा बजट में कटौती कर दी. सेना के आधुनिकीकरण का मसला ताक पर चला गया. सेना के आयुध संग्रहालय में रखे जाने लायक हैं, उन्हीं के बूते पाकिस्तान और चीन से लड़ने के राष्ट्रवादी भाषण परोसे जा रहे हैं. सैनिकों का बलिदान जारी है, नेताओं का भाषण जारी है. सेना को मिलने वाली सारी सुविधाएं छीनी जा चुकी हैं. यहां तक कि सेना को सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के मुताबिक वेतन भी नहीं दिया जा रहा. वन रैंक वन पेंशन की झांसापट्टी की कलई भी खुल ही चुकी है. रक्षा क्षेत्र में मोदी सरकार के तीन साल धोखेबाजी, झांसापट्टी और जुमलेबाजी में ही खर्च हो गए. इन तीन वर्षों में सैनिकों और अर्ध सैनिक बलों के जवानों की शहादतें कितनी हुईं, उसका ब्यौरा सामने रखें, तो केंद्र सरकार की बेशर्मी सामने दिखने लगेगी. रक्षा बजट में कटौती करने के मोदी सरकार के फैसले पर रक्षा मंत्रालय देखने वाली संसद की स्थायी समिति भी हैरत जता चुकी है. संसदीय समिति ने रक्षा मंत्रालय के बजट में पूंजीगत आवंटन कम करने पर सरकार को आड़े हाथों लिया और कहा कि इससे सशस्त्र सेनाओं के आधुनिकीकरण का अभियान बुरी तरह प्रभावित होगा. स्थायी समिति ने संसद में पेश रिपोर्ट में भारत सरकार के फैसले पर हैरानी जताई और कहा कि धन के अभाव के कारण सेना अपनी अनिवार्य प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में नाकाम रही. समिति ने केंद्र सरकार को हिदायत दी कि सेना के आधुनिकीकरण के काम में किसी तरह की बाधा नहीं आनी चाहिए. संसदीय समिति ने इस बात को भी गंभीरता से लिया कि वर्ष 2000-2001 का रक्षा व्यय 2.36 प्रतिशत था, वह वर्ष 2017-18 में घटकर महज 1.56 प्रतिशत रह गया. जबकि महंगाई और बदले दौर को देखते हुए रक्षा बजट काफी ऊपर रहना चाहिए था. संसदीय समिति ने वित्त वर्ष 2017-18 के लिए 2.74 लाख करोड़ रुपए के रक्षा बजट को जरूरत से काफी कम बताया. सेना एक तरफ पाकिस्तान पोषित आतंकवाद से जूझ रही है, तो दूसरी तरफ आधुनिकीकरण की समस्या का सामना कर रही है. सेना के आधुनिकीकरण के लिए 42,500 करोड़ रुपए की जरूरत थी लेकिन बजट में केवल 25,254 करोड़ रुपए ही दिए गए. इसमें से 23,000 करोड़ रुपए पहले की देनदारियां चुकाने में ही खर्च हो जाएंगे. लिहाजा, सेना को आधुनिकीकरण के लिए महज 2,254 करोड़ रुपए मिल पाए. इससे सेना को क्या मिलेगा और हम पाकिस्तान-चीन से लड़ने में कितना सक्षम बन पाएंगे, इसका जवाब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ही दे सकते हैं. संसदीय समिति ने इस पर आश्चर्य जताया और कहा कि यह बजट सशस्त्र सेनाओं के आधुनिकीकरण के लिए काफी कम है. समिति ने सेना के तीनों अंगों का हवाला देते हुए कहा है कि सेना के सारे आयुध और हथियार पुराने हो चुके हैं और अन्य संसाधनों की भी भारी कमी है. वायुसेना की रिपोर्ट कहती है कि अगले 10 साल में उसके 33 स्क्वाड्रन घटकर सिर्फ 19 रह जाएंगे. 2027 तक मिग-21, मिग-27 और मिग-29 विमानों के 14 स्क्वाड्रन रिटायर हो रहे हैं. लेकिन इनकी भरपाई कैसे हो, इस पर गंभीरता से सोचना रक्षा मंत्री की प्राथमिकता में नहीं है और प्रधानमंत्री को विदेश यात्राओं से फुर्सत नहीं है.

पाकिस्तान में किए गए सर्जिकल स्ट्राइक या म्यामांर के सीमाई इलाकों में घुस कर चलाए गए ऑपरेशन के प्रचार-प्रसार से सेना को मजबूती नहीं मिलेगी. सेना की असली मजबूती रक्षा उपकरणों, आयुधों, वाहनों, विमानों, टैंकों, तोपखानों, युद्धपोतों, पनडुब्बियों और मिसाइलों के आधुनिकीकरण से होगी.

(शेष पृष्ठ 7 पर)

मोदी के इज़राइली दौरे से भारतीय रक्षा क्षेत्र को उम्मीदें

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का जुलाई महीने में इजराइल का दौरा प्रस्तावित है. मोदी की इजराइल यात्रा के पहले राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार अजित डोभाल इजराइल जाकर जायजा ले चुके हैं और वहां के सुरक्षा सलाहकार से मुलाकात कर चुके हैं. भारत और इजराइल के राजनयिक संबंधों के 25 साल पूरा होने के उपलक्ष्य में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू मिलेंगे और सुरक्षा मसलों पर बातचीत करेंगे. मोदी पहले भारतीय प्रधानमंत्री हैं, जो इजराइल जा रहे हैं. इस ऐतिहासिक दौरे पर दुनियाभर की निगाहें लगी हैं. वैसे, मोदी सरकार आने के बाद से भारत और इजराइल काफी करीब आए हैं. मोदी की इजराइल यात्रा का महत्व इस बात से ही समझा जा सकता है कि पिछले ही दिनों केंद्र सरकार की रक्षा खरीद समिति ने इजराइल से भारतीय नौसेना के लिए बराक मिसाइलें खरीदने का फैसला किया. समिति ने 860 करोड़ रुपए से अधिक के रक्षा सौदों को मंजूरी दी. बराक मिसाइलों की जरूरत हिंद महासागर क्षेत्र में बदलते सुरक्षा परिदृश्य के मद्देनजर भारत की समुद्री क्षमता बढ़ाने के लिए काफी अहम है. बराक मध्यम रेंज की सतह से आकाश में मार करने वाली मिसाइल है, जो नौसेना के युद्धपोतों में लगाई जाती है. बराक-1 मिसाइलें इजराइल की राफेल कंपनी से खरीदी जाएंगी. कुल सौ बराक मिसाइलों की कीमत 500 करोड़ रुपए होगी. इसके बाद भारतीय नौसना के लगभग सभी जहाज इन मिसाइलों से लैस हो जाएंगे. इजराइल यात्रा के दौरान नरेंद्र मोदी फिलस्तीनी इलाके का दौरा नहीं करेंगे. उनका दौरा इजराइल तक ही सीमित रहेगा. इजराइल को लेकर मोदी ने अपनी विदेश नीति बदली है. वर्ष 2015 में राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी जब इजराइल के दौरे पर गए थे, तो उन्होंने फिलस्तीनी इलाकों और जॉर्डन का भी दौरा किया था.

केंद्र की मौजूदा भाजपा सरकार भी अलग फिलस्तीनी राज्य का समर्थन करती है और मध्य-पूर्व में विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे की हिमायत करती है. करगिल युद्ध के बाद भारत की रक्षा प्रणाली में इजराइल की सार्थक भूमिका के बाद इजराइल और भारत के रिश्तों में काफी गर्माहट आई है. आज भारत इजराइल से रक्षा उपकरण खरीदने वाला दुनिया का सबसे बड़ा देश है. सीमा सुरक्षा प्रणाली, राष्ट्रीय सुरक्षा और आतंकवाद से मुकाबला करने में इजराइल भारत की मदद कर रहा है. इसके साथ ही डेयरी, सिंचाई, ऊर्जा, इंजीनियरिंग और विज्ञान के क्षेत्रों में भी दोनों देशों के बीच सहयोग तेजी से बढ़ा है.

लचर रक्षा नीति का 'राष्ट्रवाद'

पृष्ठ 6 का शेष

कांग्रेस-काल में विदेशी पूंजी निवेश का पुरजोर विरोध करने वाली भारतीय जनता पार्टी सत्ता में आते ही बदल गई और उसने रक्षा जैसे संवेदनशील क्षेत्र में विदेशी पूंजी निवेश का दरवाजा खोल दिया. मोदी सरकार ने अनिल अंबानी, टाटा समेत कई पूंजी घरानों को भी देश के रक्षा उत्पादन क्षेत्र में घुसने के लिए रास्ता खोल दिया है. विशेषज्ञों का मानना है कि रक्षा उत्पाद के संवेदनशील क्षेत्र में बाहरी घुसपैठ के बजाय इजरायल की तरह खुद को मजबूत करना अधिक श्रेयस्कर और दूरगामी असर पैदा करने वाला होता है. रक्षा उत्पाद के क्षेत्र में बाहरी निवेश (घुसपैठ) से युद्धपोत, विमान और टैंक जैसे संवेदनशील हथियार बनाने में निजी कंपनियों के एकाधिकार का खतरा रहता है. निजी क्षेत्र का एकाधिकार सरकारी क्षेत्र पर भारी पड़ेगा. रक्षा क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी की बेवकूफाना सलाह धीरेंद्र सिंह समिति ने केंद्र सरकार को दी थी. समिति में रक्षा मंत्रालय के मौजूदा और पूर्व के कई विशेषज्ञ अधिकारी भी शरीक थे, जिन्होंने रक्षा क्षेत्र के दरवाजे पूंजी-प्रतिस्पर्धा के लिए नहीं खोलने की सिफारिश की थी. फिर रक्षा अनुसंधान एवं विकास संस्थान (डीआरडीओ) के पूर्व प्रमुख वीके अत्रे के नेतृत्व में एक विशेष कार्यदल का गठन किया गया. अत्रे कमेटी को विमान और हेलीकॉप्टर, युद्धपोत और पनडुब्बी, जंगी वाहन, मिसाइल, कमांड और कंट्रोल सिस्टम समेत कई अहम रक्षा उपकरणों के निर्माण में निजी कंपनियों की भागीदारी की संभावना पर अध्ययन करने की जिम्मेदारी दी गई थी. अत्रे कमेटी ने इस मामले में पूरा रायता ही फैला दिया. इतनी गुत्थियां उलझा दीं कि सब घालमेल में फंस गया. विशेषज्ञों का कहना है कि इन कमेटियों की कोई जरूरत ही नहीं थी, क्योंकि इस मामले में वर्ष 2000 की विजय केलकर समिति की रिपोर्ट पहले से ही सत्ता गलियारे में धूल फांक रही थी.

मोदी की विदेश यात्रा से रक्षा क्षेत्र को कुछ फायदे भी हुए

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की विदेश यात्राओं से रक्षा क्षेत्र में कुछ उल्लेखनीय प्रगति भी हुई है, उसे भी सामने रखना जरूरी है. मोदी की रूस यात्रा में भारत ने रूस के साथ एस-400 ट्रंफ वायु रक्षा प्रणाली का सौदा किया. यह सौदा पांच अरब डॉलर से भी अधिक मूल्य का है. यह सौदा दक्षिण एशियाई क्षेत्र के रक्षा क्षेत्र में काफी अहम माना जा रहा है. एस-400 ट्रंफ वायु रक्षा मिसाइल प्रणाली सबसे आधुनिक रूसी मिसाइल प्रणाली है. इसमें लंबी रेंज वाले रडार लगे हैं, जो एक साथ सैकड़ों लक्ष्य की शिनाख्त (ट्रैक) कर सकता है और यह अमेरिकी स्टील्थ एफ- 35 जेट्स जैसे विमानों को भी मार गिरा सकता है. एस-400 ट्रंफ वायु रक्षा मिसाइल प्रणाली 400 किलोमीटर की रेंज में दुश्मन द्वारा भेजे गए मिसाइलों, विमानों और ड्रोन्स तक को मार गिराने में सक्षम है. इसके अलावा एक अरब डॉलर के भारतीय- रूसी निवेश कोष (राष्ट्रीय संरचनात्मक निवेश कोष) के गठन को भी महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जा रहा है. एक और भारत-रूस संयुक्त उपक्रम भारत में रूसी कामोव हेलीकॉप्टर का निर्माण करेगा. योजना 200 हेलीकॉप्टरों के निर्माण की है. रूस के साथ नई रक्षा नीतियों की सूची में आंध्रप्रदेश में विशेषज्ञ प्रशिक्षण और जहाज निर्माण पर रूस के साथ भारत का संयुक्त समझौता भी है.

इसके अलावा मोदी की अमेरिका यात्रा में एशिया-प्रशांत क्षेत्र और द्विपक्षीय रक्षा हितों को प्रभावित करने वाले कई मुद्दों पर आपसी सहमति बनी. अमेरिका से तीन द्विपक्षीय रक्षा समझौते हुए. ये समझौते हैं, बेसिक एक्सचेंज एंड कोऑपरेशन एग्रीमेंट (बीईसीए), लॉजिस्टिक्स सप्लाई एग्रीमेंट (एलएसए) और कम्युनिकेशन एंड इंफॉर्मेशन सिक्योरिटी मेमोरैंडम ऑफ एग्रीमेंट (सीआईएसएमओए). 'एलएसए' समझौता दोनों देशों के लिए सैन्य रसद को साझा करने के लिए एक रूपरेखा निर्धारित कर सकता है. यह समझौता नई दिल्ली और वाशिंगटन दोनों को साधारण सैन्य रसद के साथ एक दूसरे के सैन्य बलों को सहयोग करने की क्षमता प्रदान करेगा. उदाहरण के लिए भारत का रसद समर्थन अमेरिकी नौसेना के लिए हिंद महासागर क्षेत्र में महत्वपूर्ण साबित होगा. 'सीआईएसएमओए' अमेरिका के लिए भारत में अपने मालिकाना इन्क्रिप्टेड संचार उपकरणों और प्रणालियों की आपूर्ति करने के दरवाजे खोलेगा. यह दोनों देशों के उच्च-स्तरीय सैन्य कमांडरों के बीच युद्ध के समय और शांति के समय सुरक्षित संचार करने की अनुमति देगा. 'सीआईएसएमओए' इस क्षमता का विस्तार भारतीय और अमेरिकी सैन्य सम्पत्तियों, जहाजों और विमानों में भी करेगा. 'बीईसीए' एक ऐसा मंच तैयार करेगा जिसके माध्यम से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भारत के साथ नेविगेशन और लक्ष्य बेधने में सहायता के लिए संवेदनशील आंकड़ों को साझा कर सकेगा.

भारत ने सैन्य निगरानी के लिए अमेरिका से प्रीडेटर ड्रोन विमान खरीदने का भी निर्णय लिया है. जनरल अटॉमिक्स एमक्यू-1 प्रीडेटर एक स्वचालित हवाई वाहन (यूएवी) है. इसे जनरल अटॉमिक्स ने बनाया है और अमेरिकी खुफिया एजेंसी (सीआईए) और संयुक्त राज्य अमेरिका की वायु सेना इसका मुख्य रूप से इस्तेमाल कर रही है. भारत ने अमेरिका से चिनूक और अपाचे हेलीकॉप्टर खरीदने का भी समझौता किया. पिछले साल भारत ने 15 चिनूक हेवी-लिफ्ट हेलीकॉप्टर और 22 अपाचे हमलावर हेलिकॉप्टरों की खरीद के लिए अमेरिका की दिग्गज विमानन कंपनी बोइंग और अमेरिकी सरकार से तीन अरब डॉलर का समझौता किया था. अपाचे लॉन्गबो हेलिकॉप्टर्स सबसे उन्नत बहु-उद्देश्यीय लड़ाकू हेलीकॉप्टरों में से एक हैं. ये हेलीकॉप्टर रात में उड़ान भर सकते हैं और खराब मौसम में भी काम कर सकते हैं. इनमें एक मिनट से भी कम समय में 128 लक्ष्यों को पहचानने और बेधने की क्षमता होती है. भारत ने 15 चिनूक हेवी-लिफ्ट हेलीकॉप्टर भी खरीदा है, जो 9.6 टन कार्गो, तोपें, भारी मशीनें और हल्के बख्तरबंद वाहनों को पहाड़ी स्थलों पर ले जाकर ड्रॉप कर सकते हैं. इसकी प्राथमिक भूमिका तोपखाने लगाना, सेना के अभियान और युद्ध के मैदान में आपूर्ति करना है. चिनूक का प्रयोग तोपों, जरूरी सप्लाई और अन्य भारी सैन्य उपकरणों को उत्तर-पूर्व के दुर्गम क्षेत्रों में पहुंचाने के लिए किया जाएगा.

भारत और फ्रांस के बीच राफेल लड़ाकू जेट विमान खरीदने का करार भी महत्वपूर्ण है. भारत ने 36 राफेल जेट विमानों के लिए फ्रांस के साथ 7.8 अरब यूरो का समझौता किया. ये विमान अत्याधुनिक रडार सिस्टम से लैस हैं, जो डेढ़ सौ किलोमीटर तक लक्ष्य पहचानने और बेधने में सक्षम हैं. इसमें लगे मिसाइलों का प्रयोग दुश्मनों के विमानों और क्रूज मिसाइलों को मार गिराने के लिए किया जा सकता है. राफेल जेट विमान 2000 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से उड़ान भर सकता है, जो ज्यादातर मिसाइलों के मुकाबले अधिक है.

सरकारी उपेक्षा की मारी सेना बेचारी

भारतीय सेना सरकार की उपेक्षा की शिकार है. चाहे कांग्रेस हो या भाजपा, सत्ता चरित्र वही है, बिल्कुल चरित्रहीन. कहती कुछ और करती ठीक उसके विपरीत है. देश के अंदरूनी हिस्सों से लेकर विशाल सीमा क्षेत्र तक युद्धरत भारतीय सेना सरकारी नाकारेपन और नौकरशाही की खुरपेचों के कारण विनष्ट हो रही है. सेना के संगठनात्मक ढांचे के साथ भी सरकार का बेवकूफाना रवैया जारी है. सेना के संगठनात्मक ढांचे को दुरुस्त करने का काम नौकरशाही-घड़यंत्रों के कारण आगे नहीं बढ़ पा रहा. भारतीय थल सेना के माउंटेन स्ट्राइक कोर का गठन तो महज एक उदाहरण है, जो सत्ताई-बदतमीजियों में फंस गया है. सेना के आधुनिकीकरण की दिशा में केंद्र सरकार की बेरुखी आने वाले समय में भारतीय सेना के लिए खतरनाक साबित हो सकती है. 90 हजार दक्ष सैनिकों की क्षमता वाले माउंटेन स्ट्राइक कोर को सक्रिय करने का यज्ञ वर्ष 2013 से ही चल रहा है, लेकिन सरकारें ही इसमें विघ्न डाल रही हैं. केवल मौजूदा सरकार ही नहीं, पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकार ने भी माउंटेन स्ट्राइक कोर के गठन के लिए 64 हजार करोड़ रुपए मंजूर नहीं किए थे. माउंटेन स्ट्राइक कोर के गठन के प्रस्ताव को वर्ष 2013 में यूपीए सरकार से ही हरी झंडी मिली थी. इस कोर को खास तौर पर हिमालय क्षेत्र में और तिब्बत के पठारी क्षेत्र में कारगर युद्ध की विशेषज्ञता के लिए तैयार किया जा रहा था. उम्मीद थी कि सरकार से बजट की मंजूरी मिल जाएगी, लेकिन वह नहीं मिली और मौजूदा राजग सरकार भी उस पर कुंडली मार कर बैठ गई. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी सेना के कमांडरों के सम्मेलन में इस मसले पर अपनी अनिच्छा जाहिर की और तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल दलबीर सिंह सोहाग को यह कहना पड़ा था कि माउंटेन स्ट्राइक कोर अब वर्ष 2021 के पहले सक्रिय नहीं हो पाएगा. स्थिति यह है कि देश के चार स्ट्राइक कोर में से एक 17वीं स्ट्राइक कोर झारखंड में निष्क्रिय पड़ी हुई है. तीन अन्य कोर पाकिस्तान की विभिन्न सीमाओं पर तैनात हैं. स्ट्राइक कोर को पीस एरिया में डालना बेवकूफाना सामरिक-नीति का नतीजा माना जाता है. एक आला सेनाधिकारी ने 17वीं स्ट्राइक कोर को 'नाकारा' और 'अधूरा' बताया. उनका कहना था कि एक कोर में न्यूनतम दो डिवीजन होने चाहिए, जबकि 17वीं स्ट्राइक कोर के पास केवल एक ही डिवीजन है. उक्त अधिकारी सुरक्षा के मद्देनजर भारत के भविष्य को आशंका की नजर से देखते हैं.

ऊपर हम चर्चा कर चुके हैं कि भारतीय सेना के लिए केंद्र सरकार ने जो अर्थशास्त्र रचा है, वह कम हास्यास्पद और निंदास्पद नहीं है. 2.47 लाख करोड़ के सैन्य बजट का 70 फीसदी हिस्सा सेना के वेतन और अनुरक्षण पर खर्च हो जाता है. महज 20 प्रतिशत हिस्सा सैन्य उपकरणों की खरीद के लिए बचता है. सेना को हर साल केवल उपकरणों की खरीद के लिए कम से कम 10 हजार करोड़ रुपए की जरूरत है, जबकि उसके पास बचते हैं मात्र 15 सौ करोड़ रुपए. भारतीय सेना के लिए राइफलें, वाहन, मिसाइलें, तोपें और हेलीकॉप्टर खरीदने की अनिवार्यता चार लाख करोड़ रुपए के लिए लंबित पड़ी हुई है. जबकि सेना की युद्ध क्षमता को विश्व मानक पर दुरुस्त रखने के लिए यह काम निहायत जरूरी है. अब तो पाकिस्तान के साथ-साथ चीन की ओर से भी खतरा तेजी से घिरता जा रहा है. ऐसे में यह काम पहली प्राथमिकता पर होना चाहिए.

यूपीए सरकार की ही तरह राजग सरकार के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी माउंटेन स्ट्राइक कोर को सक्रिय करने के लिए जरूरी 64 हजार रुपए मंजूर नहीं किए हैं. इस वजह से न सेना मजबूत हो पा रही है और न चीन से लगी अंतरराष्ट्रीय सीमा पर सुरक्षा बंदोबस्त पुख्ता हो सका है. मोदी ने तो माउंटेन स्ट्राइक कोर के गठन के प्रस्ताव को ही दोबारा पुनरीक्षण (रिव्यू) में डाल दिया और सुरक्षा सलाहकार अजित डोवाल को इसकी जिम्मेदारी दे दी. डोवाल ने तो 17वीं कोर को निष्क्रिय करने की ही सिफारिश कर दी. यह रक्षा व्यवस्था के प्रति भारत सरकार के दृष्टिकोण की असलियत है.

आपको याद दिलाते चलें कि वर्ष 1986 में अरुणाचल प्रदेश के सुमडोरोंग चू घाटी में चीनी सेना के साथ हुई आमने-सामने की तनातनी में तत्कालीन थलसेना अध्यक्ष जनरल के सुंदरजी ने 'ऑपरेशन फाल्कन' के तहत पूरी एक इन्फैंट्री ब्रिगेड को वायुसेना के जहाजों के जरिए उतार दिया था. उसके बाद ही स्ट्राइक कोर की योजना पर सैन्य रणनीतिकार तेजी से काम करने लगे. वर्ष 2003 में तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल एनसी विज के कार्यकाल में पाकिस्तान और चीन, दोनों सीमाओं पर नई सुरक्षा रणनीति अपनाने की योजना बनी. तभी यह योजना बन गई कि 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017) में माउंटेन स्ट्राइक कोर को अस्तित्व में लाया जाएगा. इसके बाद भी भारत को चीन की तरफ से कई तीखे और अपमानजनक व्यवहार झेलने पड़े. चीनी सेना भारतीय क्षेत्र में 19 किलोमीटर अंदर तक घुस आई, पर हम कुछ नहीं कर पाए. अप्रैल-मई 2013 की घटना से खुद भारतीय सेना भी शर्मसार हुई. सेनाध्यक्ष जनरल बिक्रम सिंह ने सुरक्षा मामलों की कैबिनेट कमेटी के समक्ष खुद उपस्थित होकर सीमा की विषम स्थिति के बारे में तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह व अन्य वरिष्ठ मंत्रियों को अवगत कराया. तब जाकर जुलाई 2013 में यूपीए सरकार ने माउंटेन स्ट्राइक कोर के प्रस्ताव को औपचारिक मंजूरी दे दी. लेकिन कोर को सक्रिय करने के लिए जरूरी धन की मंजूरी नहीं दी. यूपीए के बाद केंद्र की सत्ता में आई राजग की सरकार ने भी इसकी मंजूरी नहीं दी और उल्टा कोर गठन के प्रस्ताव को ही पेंच में उलझा दिया. रक्षा मंत्रालय के कुछ अधिकारी अब माउंटेन स्ट्राइक कोर के 2021 में अस्तित्व में आने की उम्मीद जताते हैं, लेकिन इसे पक्का नहीं बताते. वे यह भी आशंका जताते हैं कि तबतक कहीं देर न हो जाए. चीन से लगने वाली संवेदनशील सीमा में सेना के सुगमता से आने-जाने के लिए ढांचागत विकास की रफ्तार ही इतनी ढीली है कि चीन बड़ी आसानी से इधर आकर भारतीय रक्षा प्रणाली को तहस-नहस कर सकता है. आप आश्चर्य करेंगे कि विस्तृत चीन सीमा तक पहुंचने वाली अत्यंत संवेदनशील 75 सड़कों में से केवल 21 सड़कें ही अब तक तैयार हो पाई हैं. 54 सड़कों के निर्माण का काम अभी शुरू भी नहीं हुआ है. वर्ष 2010 में ही चीन सीमा क्षेत्र में 28 रेलवे लाइनें बिछाने का प्रस्ताव मंजूर किया गया था. लेकिन आज तक इस प्रोजेक्ट पर काम शुरू नहीं हुआ. यह संसद में रखे गए आधिकारिक दस्तावेज से ली गई सूचना है. स्ट्राइक कोर की खासियत शत्रु पर सीधे प्रहार की होती है. 1962 के युद्ध में भारतीय सेना ने रक्षात्मक प्रणाली का खामियाजा भुगत लिया था. इसलिए दुश्मन पर सीधा प्रहार करने और दुश्मन के इलाके में घुस कर तबाही मचाने की रणनीति पर काम शुरू हुआ. स्ट्राइक कोर इसी परिवर्तित रणनीति का हिस्सा है, लेकिन सरकार की अदूरदर्शिता के कारण इस पर ग्रहण लगा हुआ है. ■

रक्षा उत्पाद क्षेत्र में निजी या विदेशी निवेश ख़तरनाक

सुरक्षा मामलों के विशेषज्ञ रक्षा उत्पादन के क्षेत्र में विदेशी पूंजी निवेश की इजाजत को सुरक्षा और आत्मनिर्भरता, दोनों दृष्टिकोणों से अनुचित मानते हैं. उनका सवाल है कि क्या भारत के सार्वजनिक प्रतिष्ठान विदेशी तकनीक के सहयोग से स्वदेशी निर्मित उपकरण नहीं बना सकते? क्या हम अपनी प्रतिभा और संसाधनों से रक्षा के मामले में आत्मनिर्भर नहीं बन सकते? रक्षा उत्पादन के क्षेत्र में हमारी आत्मनिर्भरता रक्षा खरीद में विशाल रिश्वतखोरी के कारण विकसित नहीं हो पाई. आजादी के बाद से आज तक भ्रष्ट नेताओं और नौकरशाहों ने भारी रिश्वत और अय्याशी के प्रलोभन में रक्षा क्षेत्र को आत्मनिर्भर नहीं बनने दिया. देश में रक्षा उपकरणों का उत्पाद बड़े स्तर पर होता तो हम रक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ रक्षा उत्पादों के बड़े विक्रेता भी हो जाते. इससे हम अबतक इजराइल की तरह मजबूत हुए होते और रक्षा मामले में परंपरागत तरीके से होती चली आ रही दलाली से बच सकते थे. बेरोजगारी की समस्या भी दूर हो जाती. रक्षा उत्पाद के क्षेत्र में विदेशी निवेश से उस देश का हमारे देश पर रक्षा वर्चस्व कायम होगा और हमें उसकी गलत नीतियां भी सहन करनी पड़ेंगी. निवेश करने वाला देश हमें दोयम दर्जे की तकनीक और उपकरण मुहैया कराएगा और हमें बर्दाश्त करना पड़ेगा. अमेरिका का उदाहरण सामने है कि उसे जब अपनी वायुसेना का आधुनिकीकरण करना था, तो उसने अपने एफ-16 विमानों का 'कूड़ा' पाकिस्तान को बेच दिया और अपना बेड़ा आधुनिक कर लिया. रक्षा विशेषज्ञ कहते हैं कि दूसरे विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी के प्रमुख उद्योगपति ऑस्कर श्किंडलर को हिटलर की सरकार ने बड़े पैमाने पर आयुध बनाने का ठेका दिया था. श्किंडलर ने ऐसे गोले बनाए, जो युद्ध में कटे ही नहीं. इससे जर्मन सेना का मनोबल टूट गया और हिटलर को हार का और मौत का सामना करना पड़ा. श्किंडलर ने दुश्मन देशों से विश्वत ली हो या उसने हिटलर की पीठ में छुरा घोंपा हो, जो भी हो, लेकिन उसकी करतूत ने पूरी दुनिया को यह सोचने पर मजबूर जरूर किया कि सरकारों को देश के रक्षा उत्पादों का संवेदनशील काम देसी या विदेशी पूंजी घरानों को नहीं देना चाहिए, क्योंकि यह हमेशा खतरे की सनद देता रहेगा.

यूपीए सरकार की ही तरह राजग सरकार के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी माउंटेन स्ट्राइक कोर को सक्रिय करने के लिए जरूरी 64 हजार रुपए मंजूर नहीं किए हैं. इस वजह से न सेना मजबूत हो पा रही है और न चीन से लगी अंतरराष्ट्रीय सीमा पर सुरक्षा बंदोबस्त पुख्ता हो सका है. मोदी ने तो माउंटेन स्ट्राइक कोर के गठन के प्रस्ताव को ही दोबारा पुनरीक्षण (रिव्यू) में डाल दिया और सुरक्षा सलाहकार अजित डोवाल को इसकी जिम्मेदारी दे दी. डोवाल ने तो 17वीं कोर को निष्क्रिय करने की ही सिफारिश कर दी. यह रक्षा व्यवस्था के प्रति भारत सरकार के दृष्टिकोण की असलियत है.

feedback@chauthiduniya.com

ईवीएम को चुनौती दो या 2019 की तैयारी करो

www.kamalmorarka.com

कमल मोरारका

ये सरकार कांग्रेस की नक़ल में कांग्रेस को भी मात दे रही है, फर्क सिर्फ़ इतना है कि भाजपा ये काम अपरिपक्व और बेढंगे तरीके से कर रही है. यदि कांग्रेस इनके स्थान पर होती, तो वो कहती कि इन चीज़ों से उनका कोई वास्ता नहीं है, कानून अपना काम रहा है. यहां भारतीय जनता पार्टी के प्रवक्ता विपक्षी नेताओं को नीचा दिखाने की हर मुमकिन कोशिश करते हैं. लालू यादव, बेनामी जायेदाद. हम भाजपा नेताओं को टीवी पर सुनना चाहते हैं, सरकार को नहीं. नेता समझ रहे हैं कि वे ही सरकार हैं. वे जोकरों की तरह दिखने लगे हैं. एक प्रवक्ता हैं, संबित पात्रा. ज़रा उनकी भाषा को देखिए, उनकी बॉडी लैंग्वेज को देखिए, उनके तर्क को देखिए. जब वे कहते हैं कि कांग्रेस भी ऐसा किया करती थी, तो उन्हें ये एहसास नहीं होता कि ऐसा कह कर वे यह दावा कर रहे हैं कि वे केवल कांग्रेस के पूरक हैं, उनके विकल्प नहीं हैं. वे समझते हैं कि ऐसा करना ठीक है, क्योंकि कांग्रेस ऐसा करती थी इसलिए हम भी करेंगे.

पिछले सप्ताह अखबारों की सुर्खियों में दो विषय प्रमुख रहे. पहला, जांच एजेंसियों का विपक्षी नेताओं को ऐसे मुद्दों पर घेरना जो अभी तक स्पष्ट नहीं हैं. मिसाल के तौर पर कार्ति चिदंबरम, जो एक बिज़नसमैन हैं. उनकी कंपनियां सही ढंग से व्यवस्थित हैं. तीन साल से उनके खिलाफ साक्ष्य तलाशने की कोशिश हो रही है. यदि अफवाहों पर विश्वास करें, तो इन तमाम कोशिशों के बावजूद उनके यहां से 15 हज़ार डॉलर की राशि बरामद हुई थी, जो एक बहुत ही छोटी राशि है और जिसमें अनियमितता पाई गई. पिछले दिनों प्रवर्तन निदेशालय और सीबीआई ने उनके आवास पर इस उम्मीद में छापा मारा कि उनके खिलाफ सबूत इकट्ठे किए जा सकते हैं या ज़रूरत पड़े, तो उन्हें गिरफ्तार भी किया जा सकता है. लेकिन ये सब ठीक नहीं है. ऐसा प्रतीत नहीं होना चाहिए कि सरकारी तंत्र का इस्तेमाल कर सरकार अपने विरोधियों को परेशान कर रही है. इसका बहुत फायदा नहीं मिलने वाला. उत्तर प्रदेश चुनाव में मिले जन समर्थन के बाद इस तरह की चीज़ें भाजपा की असुरक्षा को दर्शाती हैं. यदि पार्टी का दावा है कि नरेंद्र मोदी सम्पूर्ण भारत में स्वीकार्य हैं, तो फिर वो इतनी घबराई हुई क्यों है? भारत सरकार पी चिदंबरम को डराना क्यों चाहती है? क्या इसलिए कि वे हर रविवार को इंडियन एक्सप्रेस में एक कॉलम लिखते हैं! मैं यहां ज़रूर कहूंगा कि उनके कॉलम बहुत ही शालीन और संतुलित होते हैं. उनकी भाषा ऐसी होती है, जैसी किसी पूर्व वित्त मंत्री की होनी चाहिए. वे अलग-अलग मामलों पर सरकार को सुझाव भी देते हैं. बेशक, वे इस बात की आलोचना करते हैं कि सरकार विकास के जो दावे कर रही है वो ज़मीनी स्तर पर नहीं दिखते. कृषि क्षेत्र और रोज़गार सृजन के लिए वे ठोस सुझाव देते रहे हैं. दरअसल, सरकार की घबराहट मेरी समझ से बाहर है.

बहरहाल, ये सरकार कांग्रेस की नक़ल में कांग्रेस को भी मात दे रही है, फर्क सिर्फ इतना है कि भाजपा ये काम अपरिपक्व और बेढंगे तरीके से कर रही है. यदि कांग्रेस इनके स्थान पर होती, तो वो कहती कि इन चीज़ों से उनका कोई वास्ता नहीं है, कानून अपना काम रहा है. यहां भारतीय जनता पार्टी के प्रवक्ता विपक्षी नेताओं को नीचा दिखाने की हर मुमकिन कोशिश करते हैं. लालू यादव, बेनामी जायेदाद. हम भाजपा नेताओं को टीवी पर सुनना चाहते हैं, सरकार को नहीं. नेता समझ रहे हैं कि वे ही सरकार हैं. वे जोकरों की तरह दिखने लगे हैं. एक प्रवक्ता हैं, संबित पात्रा. ज़रा उनकी भाषा को देखिए, उनकी बॉडी लैंग्वेज को देखिए, उनके तर्क को देखिए. जब वे कहते हैं कि कांग्रेस भी ऐसा किया करती थी, तो उन्हें ये एहसास नहीं होता कि ऐसा कह कर वे यह दावा कर रहे हैं कि वे केवल कांग्रेस के पूरक हैं, उनके विकल्प नहीं हैं. वे समझते हैं कि ऐसा करना ठीक है, क्योंकि कांग्रेस ऐसा करती थी इसलिए हम भी करेंगे. चाहे सीबीआई का दुरूपयोग हो, प्रवर्तन निदेशालय का दुरूपयोग हो, गवर्नर के दफ्तर का दुरूपयोग हो, विपक्ष से एमएलए की खरीद हो, यदि जनता ने उन्हें नहीं चुना है, तो भी सरकार बनाने जैसे मामले हैं. दरअसल, कांग्रेस इनसे बड़े गुनाह की दोषी नहीं है! लिहाज़ा, उच्च नैतिकता की बात, पार्टी विद डिफरेंस (अडवाणी जी कहा करते थे कि हम पार्टी विद डिफरेंस हैं, यदि जनता हमें नहीं चुनेगी तो विपक्ष में बैठेंगे) सारी चीज़ें कहीं खो गई हैं. अब मामला बहुत सीधा है. लड़ाई शुरू हो गई है, सत्ता हमारे हाथ में है, हम आप पर मुकदमा चलाएंगे आप को प्रताड़ित करेंगे, नतीजा चाहे जो भी हो.

दूसरा विषय विपक्षी नेताओं से सम्बंधित है. उनकी भी बात मेरी समझ में नहीं आती. फ़र्ज़ कर लीजिए कि लालू यादव के कथित बेनामी जायेदादों को उजागर करने के लिए दिल्ली और गुड़गांव के 20 जगहों पर छापेमारी होती है. इस मसले पर जिस तरह से रिपोर्टिंग हुई, उसपर लालू यादव को ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिए. क्या उन्हें पता नहीं है कि तमाम राष्ट्रीय अख़बार पूंजीपतियों द्वारा संचालित होते हैं. इस देश के पूंजीपति किसी भी हालत में सरकार के विरुद्ध नहीं जा सकते. एक बदतर घटना घटी, इंदिरा गांधी ने आपातकाल घोषित कर दी और सेंसरशिप लागू कर दिया. लोगों की आवाज़ बंद करने का यह कानूनी तरीका था. हर किसी को पैसा दिया गया किसी को विज्ञापन के ज़रिए, किसी को दूसरे माध्यम से और उसके बाद हर कोई बिना किसी तर्क के एक ही सुर में गाने लगा. ऐसे अख़बार और संपादक जिनके लिए मेरे मन में आदर है, वे कहीं नहीं दिख रहे हैं.

विपक्ष की रणनीति इन दो में से कोई एक होनी चाहिए. पहली या तो आप खामोश हो जाइए और 2019 के चुनाव के लिए ख़ामोशी के साथ तैयारी कीजिए और भाजपा के खिलाफ किसी एक उम्मीदवार को उतारिए. आपको किसी एक पर सहमती बनानी पड़ेगी, जैसा कि 1977 में जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि जब तक आप आमने सामने की लड़ाई नहीं लड़ेंगे, मैं आपके लिए नहीं लड़ूंगा. आज भी वही स्थिति आ गई है. यहां सवाल ये है कि क्या आप वास्तव में भाजपा को 2019 में हराना चाहते हैं? यदि हां, तो फिर आपके पास कोई और विकल्प नहीं है कि आप अपने अहंकार को छोड़ कर, थोड़ी कुर्बानी दीजिए. एक बार जब लोकतंत्र सुरक्षित हो जाए, तो फिर 2024 भी आएगा. लेकिन फिलहाल आपको अपने महत्वाकांक्षाओं को अलग रखना होगा और एक ऐसा उम्मीदवार चुनना होगा, जिसकी जीतने की उम्मीद अधिक हो, चाहे वो जिस पार्टी से सम्बंधित हो. यह पहला विकल्प है.

यदि इतनी धीरज नहीं है और आप आज ही आंदोलन छेड़ना चाहते हैं, तो राष्ट्रपति का चुनाव लड़ना कोई मायने नहीं रखता. क्योंकि राष्ट्रपति के पास कोई अधिकार नहीं होता. दरअसल, संविधान में जहां कहीं भी राष्ट्रपति का नाम आया है उसका अर्थ होता है भारतीय सरकार. यहां तक कि किसी को माफ़ी देने का अधिकार भी राष्ट्रपति के पास नहीं है, वो किसी को माफ़ी नहीं दे सकता. जब भी माफ़ी की कोई अपील आती है, राष्ट्रपति उसे गृहमंत्रालय को भेजते हैं. गृह मंत्रालय और यूनियन कैबिनेट उस पर फैसला करते हैं. ब्रिटिश महारानी की तरह राष्ट्रपति देश के टाईटुलर हेड होते हैं. वे देश की गरिमा का प्रतिनिधित्व करते हैं. उनका पद कोई राजनैतिक पद नहीं है. यदि 2019 से पहले वाकई आप कुछ करना चाहते हैं, तो ईवीएम पर सवाल उठाइए. मैं उन लोगों में से हूं, जो ये समझते हैं कि चुनाव, चुनाव होते हैं. इनमें कोई जीतता है, कोई हारता है. चुनावी प्रक्रिया की ईमानदारी और सच्चाई पर सवाल क्यों खड़े किए जाएं? लेकिन ईवीएम पर कई हलकों से बहुत ही गंभीर संदेह ज़ाहिर किए गए हैं. यदि वाकई ऐसा है और विपक्ष इसको मानता है, तो ईवीएम को मुद्दा बनाना चाहिए. उन्हें कहना चाहिए कि 2019 में ईवीएम का उपयोग नहीं होना चाहिए. चुनाव पहले की तरह बैलट पेपर पर होने चाहिए. यदि चुनाव नतीजे आने में देरी होती है, तो उसे क्या फर्क पड़ता है. जल्दी किसको है? उन्हें कहना चाहिए कि भले भाजपा एक बार फिर चुन ली जाए, हम ईवीएम से होने वाले चुनाव का बहिष्कार करेंगे, क्योंकि यदि चुनावी प्रक्रिया में छेड़छाड़ होती है, तो वैसे भी भाजपा ही जीतेगी. हमें अफ्रीकी देशों के रास्ते पर नहीं जाना चाहिए, जहां चुनाव चुराए जाते हैं या बांग्लादेश जहां सभी पार्टियों ने चुनाव का बहिष्कार किया और शेख हसीना दूसरी बार जीत गईं. यह सही तरीका नहीं है.

इन सभी चीज़ों को एक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए हम एक सुर में कहते हैं कि 2019 के चुनाव ईमानदारी से होंगे और भाजपा और विपक्ष के बीच में होंगे, चाहे उनके नतीजे जो भी हों. आखिरकार हम लोकतंत्र में विश्वास रखते हैं. यदि लोग वाकई भाजपा का समर्थन करना चाहते हैं, यदि वे वाकई सेक्युलर नहीं रहना चाहते, तो हम कुछ नहीं कर सकते. लेकिन ऐसा होता नहीं दिख रहा है, क्योंकि 2014 में उन्हें केवल 31 प्रतिशत वोट मिले थे, 69 प्रतिशत ने उन्हें वोट नहीं दिया था. वो भी उन्हें कुल वोटिंग का 31 प्रतिशत वोट मिला था. इस लिहाज़ से देखा जाए, तो देश के 125 करोड़ लोगों में से केवल 15-16 करोड़ लोगों ने उन्हें वोट दिया था. यह देश केवल 1950 में नेहरु, आंबेडकर और अन्य लोगों द्वारा तैयार संविधान की वजह से धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक नहीं है, बल्कि यह देश अपनी परम्परा और संस्कृति के कारण धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और लोकतांत्रिक है.

यदि ये लोग कहते हैं कि औरंगजेब ने सबका धर्मांतरण करवा दिया, लिहाज़ा उसके नाम पर सड़क नहीं होनी चाहिए. लेकिन औरंगजेब ने तो 50 साल तक शासन किया, यदि उसने सबका धर्मांतरण करवा दिया होता तो देश में 85 प्रतिशत हिन्दू कहां से आ गए? भारत को एक मुस्लिम देश बन जाना चाहिए था? राजनैतिक लाभ के लिए कांग्रेस पर मुस्लिम तुष्टिकरण के आरोप लगाने पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है. लेकिन तथ्यों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता. यह हिन्दू प्रभुत्व वाला देश है. हिन्दू का अर्थ हिंदुत्व नहीं है. हिन्दू का मतलब सनातन धर्म है, जिसका सदियों से जीओ और जीने दो की परम्परा में विश्वास है. सनातन धर्म को किसी मुस्लिम, इसाई, सिख या जैन से कोई आपत्ति नहीं है. सनातन धर्म के कभी नहीं बदलने वाले मूल्य हैं, उनमें से एक ये देश है, जो कभी बदल नहीं सकता. मोदी आते रहेंगे और जाते रहेंगे. हम मुगलों को झेल गए, हम अंग्रेजों को झेल गए तो क्या हम भाजपा सरकार के पांच-दस साल नहीं झेल सकते? देश बहुत मजबूत है, घबराने की कोई वजह नहीं है, लेकिन हमें सही रास्ते पर चलना चाहिए. या तो हमें पूरी चुनावी प्रक्रिया को चुनौती देनी चाहिए या फिर 2019 की तैयारी करनी चाहिए. इसके अलावा कुछ करने का कोई अर्थ नहीं है.■

feedback@chauthiduniya.com

टीवी चैनलों पर प्रतिबंध की कहानी

शुजात बुख़ारी

मुख्यमंत्री महबूबा मुफ़्ती ने 8 मई को नेशनल टीवी चैनलों से अपील की कि वे ऐसी बहसें प्रसारित न करें, जिनसे कश्मीर के लोगों के प्रति भारत के दूसरे क्षेत्रों में घृणा की भावना पैदा हो. उनका बयान उस समय आया जब उनका प्रशासन राज्य की शीतकालीन राजधानी जम्मू से हस्तांतरित होकर ग्रीष्मकालीन राजधानी श्रीनगर से काम करना शुरू कर दिया है.

उनकी अपील टीवी चैनलों की भूमिका के सम्बंध में बहुत कुछ कह जाती है. कुछ को छोड़ कर सभी चैनल लोगों को भड़काने का काम कर रहे हैं और उन्हें कठघरे में खड़ा कर रहे हैं. महबूबा का बयान एक निंदा की तरह है, खास तौर पर इसलिए कि वो जनता द्वारा चुनी हुई उस मुख्यमंत्री की तरफ से आया है, जो खुद को भारतीय कहने में विश्वास करती हैं. ज़ाहिर है, कश्मीर के हालात बिगड़ने के कई कारण हैं. लेकिन टीवी न्यूज़ रूम में बहस की आक्रामकता ने उसे और बिगाड़ दिया है. पिछले कुछ दिनों में कश्मीर इन चैनलों के लिए प्रतिस्पर्धा का एक ऐसा स्प्रिंगबोर्ड बन गया है, जिसपर छलांग लगा कर वे टीआरपी बटोरने की होड़ में लगे हुए हैं. लोकतंत्र के चौथे खम्बे के तौर पर उन्हें इससे कोई मतलब नहीं है कि वे स्थिति को सुधार रहे हैं या और पेचीदा बना रहे हैं.

जिस दिन एक नया टीवी चैनल लॉन्च हो रहा था, उसी दिन प्रतिस्पर्धी चैनलों के पास 'एक्सक्लूसिव' ख़बरें थीं. उनमें से एक ने एक 'एक्सक्लूसिव' खबर चलाई, जो हरियत कांफ्रेंस की पाकिस्तान से फंडिंग के सम्बंध में थी. ये बहस दिन भर चली. सोशल मीडिया के लिए इसका हैशटैग था, बैनर्हरियत. हालांकि ये किसी भी तरह से एक्सक्लूसिव खबर नहीं थी या ये कोई ऐसा मामला नहीं था जिससे दुनिया वाकिफ नहीं है. पाकिस्तान के हरियत समर्थन की कहानी पुरानी हो गई है. जो कहानी लीक की गई, उसका कोई मलतब नहीं है, सिवाय इसके कि लोगों को उत्तेजित किया जाए और ये धारणा पैदा की जाए कि कश्मीर पर पाकिस्तान का नियंत्रण है.

उस एक चैनल द्वारा शुरू की गई बहस के बाद जवाब में अन्य चैनलों ने भी खोए हुए कश्मीर को पुनः हासिल करने की क़वायद शुरू कर दी. उन्होंने इस्लामिक कट्टरपंथ, वहाबियत, पाकिस्तान-प्रायोजित आतंकवाद आदि की पुरानी बहस पर अपनी निर्भरता जारी रखी है. इन चैनलों ने इस प्रकार की बहस के ज़रिए सचमुच में कश्मीर को आग के हवाले कर दिया है. महबूबा मुफ्ती ने अपने बयान में इन्हीं बातों का उल्लेख किया था.

टीवी चैनलों ने अपने राष्ट्रवादी होने और भारत की संप्रभुता का रक्षक होने का ऐसे खुल कर ऐलान किया, जैसे वे भी सुरक्षा बलों का हिस्सा हों. उन्होंने ये संदेश देने की कोशिश की कि वे देशहित में काम कर रहे हैं, क्योंकि जम्मू और कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है. उनके मुताबिक सेना और अर्द्धसैनिक बल और जो हजारों लोग विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं, वे पाकिस्तान द्वारा गुमराह किए गए हैं. उनके लिहाज़ से जम्मू और कश्मीर एक राजनैतिक समस्या नहीं है और उनका नया कथानक इस्लामिक कट्टरवाद के इर्द-गिर्द घूमने लगा है.

इन टीवी चैनलों द्वारा पूरे भारत में जो उन्माद फैलाया जा रहा है, उसके परिणाम भी दिखने लगे हैं. पहली बात तो ये कि एक धारणा बन रही है कि कश्मीरी भारत के दुश्मन हैं, वे मुफ्तखोर हैं, भारत सरकार उन्हें खिला रही है. यही धारणा भारत के अलग-अलग राज्यों में पढ़ाई कर रहे कश्मीरियों पर हमलों का कारण बनी है. यही धारणा एक आम भारतीय में ये सोच पैदा करती है कि कश्मीरी वास्तव में इन्हीं के टैक्स के पैसों पर जी रहे हैं और कश्मीर को सेना द्वारा जीता जाए. दुःख की बात ये है कि भारत में कश्मीर को लेकर आम राय बदल गई है. यहां आम राय भी इसी बात को दुहरा रही है कि कश्मीर समस्या को पाकिस्तानी इस्लामिस्ट्स ने जन्म दिया है.

ये धारणा भूल जाती है कि कश्मीर एक राजनैतिक समस्या है, थी और रहेगी. ये ऐसी समस्या है, जो टीवी चैनलों द्वारा रटाए जा रहे राष्ट्रवाद के दायरे में नहीं समा पाती. वे कश्मीर को अपनी पसंद और नापसंद के हिसाब से दिखाते हैं. वे उस विडियो को दिखाएंगे जिसमें एक सीआरपीएफ जवान को कश्मीरी लड़कों द्वारा पिटता हुआ दिखाया जा रहा है, लेकिन ये उस विडियो को नहीं दिखाएंगे जिसमें एक नागरिक को आर्मी जीप में बांध कर मानव शील्ड बनाया गया है. पत्रकारिता की कोई भी ऐसी पाठ्यपुस्तक नहीं है, जो ये कहती हो कि आपको राष्ट्रभक्त होना चाहिए. पत्रकारिता की किताबें ये ज़रूर कहती हैं कि पत्रकार को नागरिकों और उनके हितों के प्रति वफादार होना चाहिए. ईमानदार पत्रकारिता सार्वजनिक जीवन में लोकतांत्रिक मूल्यों का पालन करती है. भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और लोकतांत्रिक मूल्यों से जुड़े रह कर ही कोई लोकतंत्र की भावना की आदर कर सकता है. बहरहाल, टीवी चैनलों को देखकर लगता है कि पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धांत बदल गए हैं. ज़मीनी हकीकत को मानना और उन समस्याओं के समाधान के लिए लोकतांत्रिक ढंग से कोशिश करना पत्रकारिता की ज़िम्मेदारी है न कि अंधराष्ट्रभक्ति.

टीवी के आने से पहले भारत की पत्रकारिता प्रिंट मीडिया के रूप में ठीक-ठाक थी. हालांकि वो भी कश्मीर के साथ गैर की तरह पेश आता रहा और इसे राष्ट्रवादी सोच के चश्मे से देखता रहा. चूंकि प्रिंट मीडिया का टीवी के बराबर प्रभाव नहीं होता इसलिए कश्मीर का उससे उतना नुक़सान नहीं हुआ, जितना टीवी से हुआ. टीवी वाले प्राइम टाइम कार्यक्रमों में ऐसे चीखते-चिल्लाते हैं, जैसे वे सुरक्षा बलों के प्रोपेगेंडा सचिव हों. किसी सैनिक के मारे जाने को ऐसे दिखाया जाता है, जैसे देश जंग की स्थिति में हो. भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव दशकों पुराना है, लेकिन टीवी चैनल इसे नए स्तर तक ले गए हैं. ऐसा लगता है जैसे हवा में लड़ाई चल रही हो. एंकर्स न केवल इस्लामाबाद पर निशाना साधते हैं, बल्कि कश्मीरियों को नीचा दिखाने की हर मुमकिन कोशिश करते हैं और उनकी समझ और हैसियत को चुनौती देते रहते हैं. इनके इस कृत्य ने उनके राष्ट्रीय हित को बुरी तरह से क्षतिग्रस्त किया है.

दिलचस्प बात ये है कि जब मुख्यमंत्री ये स्वीकार कर रही थीं कि भारतीय चैनल नफरत फैला रहे हैं, तो पाकिस्तान, सऊदी अरब और ईरान से टेलीकास्ट होने वाले 34 टीवी चैनलों पर प्रतिबंध लगाने के लिए उनकी सरकार को मजबूर होना पड़ा. प्रतिबंधित चैनलों में से कई धार्मिक चैनल थे. यदि इन चैनलों को प्रतिबंधित करने की दलील ये थी कि ये गड़बड़ी पैदा कर रहे थे, तो फिर मुख्यमंत्री महबूबा मुफ्ती की स्वरोक्ति के मुताबिक कश्मीर के टीवी चैनलों को भी प्रतिबंधित किया जाना चाहिए.

कश्मीरी कोई पहली बार पाकिस्तानी चैनल नहीं देख रहे हैं. हाल के दिनों में टेलीविज़न पर दिखाए जाने वाले डेली सोप और कुकरी शो घाटी के दर्शकों के बीच लोकप्रिय हुए हैं. हालांकि एक लंबे समय से पाकिस्तानी टीवी और रेडियो की विश्वसनीयता कम रही है. एक आम मजाक ये है कि अगर पाकिस्तानी टीवी चैनलों पर मिलिटेंटो द्वारा मारे जा रहे भारतीय सैनिकों की ख़बरें सही होतीं, तो अबतक सेना समाप्त हो गई होती. ये तर्क सही हो सकता है कि ये चैनल गैरकानूनी थे, लेकिन फिर ये सवाल उठता है कि उन्हें इतने लंबे समय तक चलने की अनुमति क्यों दी गई थी? दिलचस्प बात ये है कि प्रतिबंधित चैनलों में से एक नूर टीवी है, जो सूफी विचारधारा का समर्थक है और पिछले कुछ समय से तथाकथित कश्मीर विशेषज्ञ दिल्ली में सूफी इस्लाम के पुनरुत्थान की बात कर रहे हैं, जिसपर उनके हिसाब से वहाबी इस्लाम से खतरा है.

दिल्ली की कश्मीर नीति विरोधाभासों से भरी पड़ी है. यदि कश्मीर के अख़बार केवल इसलिए प्रतिबंधित किए जाते हैं और उन्हें डीएवीपी द्वारा दिए जाने वाले विज्ञापनों से वंचित रखा जाता है कि उनकी ख़बरों से अशांति फैलती है, तो टीवी चैनलों पर कोई कार्रवाई क्यों नहीं होती, जो शांति के दुश्मन हैं? जब तक नीति निर्धारण में ये दोहरा मापदंड जारी रहेगा, तब तक किसी बदलाव की अपेक्षा नहीं की जा सकती है. टीवी चैनलों को आत्मनिरीक्षण करनी चाहिए और ऐसी पत्रकारिता करनी चाहिए जो वास्तविक राष्ट्रहित में हो, ना कि नकली राष्ट्रवाद के हित में जिसका मक़सद पैसे कमाना है.■

-लेखक राइजिंग कश्मीर के संपादक हैं.

feedback@chauthiduniya.com

संतोष भारतीय

जब तोप मुक़ाबिल हो

किसान मुस्कुराएंगे, तभी देश मुस्कुराएगा

किसानों के सवाल पर चुनाव लड़ा जाता है. प्रधानमंत्री मोदी ने किसानों को मिनिमम सपोर्ट प्राइस देने की बात की और ये भी कहा कि किसानों की आमदनी सन 2022 तक दोगुनी हो जाएगी. किसानों के सवाल पर बिहार का चुनाव लड़ा गया, जिसे लालू यादव और नीतीश कुमार ने जीता. किसानों के सवाल पर ही उत्तर प्रदेश का चुनाव लड़ा गया, जिसे भारतीय जनता पार्टी ने जीता. किसानों के सवाल विभिन्न किसान संगठन उठा रहे हैं. सवाल वही है, किसानों को बीज नहीं मिलता. किसानों को खाद महंगे दामों पर मिलता है. बीज मिलता है तो खराब बीज मिलता है या बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बीज मिलता है, जो दोबारा फसल पैदा करने लायक नहीं रहता. किसानों को उनकी उपज का उचित दाम नहीं मिलता. सरकारी खरीद में धांधली होती है. जब फसल पैदा होती है, तब सारे व्यापारी मिलकर उसकी कीमत गिरा देते हैं और फिर वो कीमतें बढ़ती हैं, लेकिन उसका कोई फायदा किसान को नहीं मिलता.

किसानों के सवाल क्यों अनसुलझे रह जाते हैं? हर पार्टी के पास किसानों से जुड़ा अनुषांगिक संगठन है. भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस हो या समाजवादी पार्टी, हर पार्टी में किसानों से जुड़ा एक अलग संगठन है. वो जब सत्ता में नहीं होते हैं, तो किसानों की लड़ाई बहुत जोर-शोर से लड़ते हैं. वामपंथी पार्टियां किसान सभा के नाम से किसानों को संगठित करती हैं, लेकिन किसान संगठित हो नहीं पाते. अब फिर किसानों के सवाल को लेकर विभिन्न संगठन अपनी आवाजें उठा रहे हैं.

किसान कर्ज के जाल में इतना उलझ जाता है कि वो आत्महत्या करने लगता है. पहले वो गांव के साहूकार के कर्ज के जाल में फंस कर आत्महत्या करता था, आजकल बैंकों के कर्ज के जाल में उलझकर आत्महत्या कर रहा है. किसान जिस परिवेश में रहता है, वहां सामाजिक इज्जत बहुत बड़ी चीज है. अगर उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा गिरती है, तो वो यह मान लेता है कि उसके जीने का अब कोई मतलब नहीं है. वो खुद मरकर तो इस दुनिया से विदा हो जाता है, लेकिन अपने परिवार को एक ऐसी लड़ाई में झोंक देता है जिसमें सिर्फ और सिर्फ बर्बादी होती है.

प्रधानमंत्री मोदी ने अपने तीन वर्ष पूरे कर लिए हैं. सफलता का जश्न जारी है, लेकिन इस जश्न में किसान कहां है? दिल्ली में तमिलनाडु के किसान प्रदर्शन करके जा चुके हैं, अब महाराष्ट्र के किसान प्रदर्शन कर रहे हैं. किसानों की कर्ज माफी के सवाल पर भारतीय जनता पार्टी के सांसद राजू शेट्टी पुना से बंबई तक का मार्च निकालने जा रहे हैं. वो उसमें दूसरे संगठनों के नेताओं को आने के लिए भी आमंत्रित कर रहे हैं. राजू शेट्टी तो भारतीय जनता पार्टी में हैं और मेरा अनुमान है कि भारतीय जनता पार्टी के सांसदों में 80 प्रतिशत से ज्यादा वो सांसद हैं, जो खुद खेती करते हैं, किसान हैं. लेकिन राजू शेट्टी के साथ ये सभी नेता शामिल नहीं हैं. कर्ज माफी के सवाल पर भारतीय जनता पार्टी ने अपनी कोई नीति नहीं बनाई है. होना ये चाहिए कि कर्ज माफ करने की जगह पर किसानों को सुविधा और अवसर देने की योजना बने, किसानों को भिखमंगा बनाने की जगह आत्मनिर्भर बनाने की योजना बने.

आजादी के बाद से अब तक लगभग सभी सरकारें केंद्र में सत्ता संभाल चुकी हैं, पर किसान वहीं का वहीं है. लगभग सात साल अटल जी प्रधानमंत्री रहे. उन्हें पूर्ण बहुमत नहीं था, शायद इसलिए वो किसानों के लिए कुछ नहीं कर पाए. अब दिल्ली में भारतीय जनता पार्टी की सरकार है. इस पार्टी से मैं सिर्फ कर्ज माफी की आशा नहीं करता, बल्कि भारतीय जनता पार्टी, जिसका दो तिहाई से ज्यादा बहुमत संसद में है, उससे ये अपेक्षा करता हूं कि वो किसानों को लेकर एक समग्र किसान नीति बनाए, किसान आयोग बनाए. उसे संवैधानिक दर्जा दे, ताकि उस आयोग द्वारा किसानों की समस्याएं केन्द्र सरकार के कानों तक पहुंच सकें. दिल्ली का जंतर-मंतर एक ऐसा स्थान है, जहां आप कितना भी चिल्लाएं, एक फर्लांग दूर कंगूरे पर बैठी भारत सरकार या भारत की संसद के कानों में वो आवाज नहीं पहुंचती. उस आवाज को वहां तक पहुंचाने के लिए कोई संवैधानिक दर्जा प्राप्त संगठन होना चाहिए. आप चाहे उसका नाम दीनदयाल उपाध्याय किसान आयोग कर दीजिए लेकिन किसान आयोग बनाइए, ताकि संसद के सामने किसानों की समस्याओं का सतत विश्लेषण पहुंच सके और किसानों को क्या सुविधाएं मिलनी चाहिए, इसकी भी नीति निर्धारित हो सके.

महाराष्ट्र में औरंगाबाद और नासिक के किसानों ने एक नई रणनीति अपनाई है. करीब 700-800 गांवों ने मीटिंग कर यह तय किया है कि वो बंबई शहर को फल और दूध नहीं भेजेंगे. इतना ही नहीं, उन्होंने ये तय किया है कि ज्यादातर किसान एक एकड़ में उतनी ही फसल पैदा करेंगे, जितनी फसल उनके परिवार के भोजन के काम आ सके. उनका कहना है कि जब हमें फसल की कीमत नहीं मिलती, हमें फसल जलानी पड़ती है, प्याज और टमाटर सड़क पर फेंकना पड़ता है, गन्ने को जलाना पड़ता है, तो हम उसे क्यों पैदा करें? हम सारे खेत बंजर छोड़ देंगे, सिर्फ एक एकड़ में खेती करेंगे. अगर ये बात देश के किसानों ने स्वीकार कर ली तो बंबई या दिल्ली जैसे शहर को या जितने भी शहर हैं, उनके सामने रोटी का संकट खड़ा हो जाएगा. तब सरकार विदेशों से बड़ी मात्रा में अनाज का आयात करेगी. मेरा मानना है कि सरकार अपनी संवेदनशीलता थोड़ा और बढ़ाए. किसानों के जीवन में रोज आने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए सरकार कोई कदम उठाए, कम से कम उनकी बात तो सुने. भारत का किसान कश्मीर नहीं है कि जिसकी बात नहीं सुनी जानी चाहिए. भारत का किसान देशद्रोही भी नहीं है. भारत का किसान तो सरकार बनाने में अपनी सबसे बड़ी भूमिका निभाता है. फिर क्यों सरकार, जो दिल्ली में है, वो किसानों की भलाई के लिए कुछ नहीं करती. उनकी तकलीफों के निवारण में आगे बढ़कर हिस्सा क्यों नहीं लेती?

केन्द्र सरकार के तीन वर्ष पूरे होने के इस हर्षोल्लास के अवसर पर मैं ये संपादकीय इसलिए लिख रहा हूं कि अगर कोई संवेदनशील सांसद इस संपादकीय को पढ़े और प्रधानमंत्री मोदी से निवेदन करे कि तीन साल पूरे होने के इस खुशी के अवसर पर आप उन किसानों को मत भूलिए, जिन्होंने आपको इतना विराट जीत दिलाने में बहुत बड़ा रोल निभाया है. किसान ने जब अच्छे दिन की बात पर भरोसा किया, तो उसे लग रहा था कि पहले साल नहीं, दूसरे साल नहीं, तो तीसरे साल उसे उपज का वादे के अनुसार दाम मिलेगा. उसे सस्ती बिजली मिलेगी, उसे पानी मिलेगा, उसकी फसल को प्रोसेस करने का कारखाना उसके ब्लॉक में लगेगा. उसे कम से कम इतना पैसा मिल जाएगा, ताकि वो अपने बच्चे को पढ़ा सके और अपनी बेटी की शादी कर सके और थोड़ा इज्जत के साथ जीवन जी सके, लेकिन ऐसा हुआ नहीं. शायद इसलिए किसान प्रदर्शन कर रहे हैं, जिसका नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी से जुड़े सांसद तक कर रहे हैं.

केन्द्र सरकार के तीन वर्ष पूरे होने के इस हर्षोल्लास के अवसर पर मैं ये संपादकीय इसलिए लिख रहा हूं कि अगर कोई संवेदनशील सांसद इस संपादकीय को पढ़े और प्रधानमंत्री मोदी से निवेदन करे कि तीन साल पूरे होने के इस खुशी के अवसर पर आप उन किसानों को मत भूलिए, जिन्होंने आपको इतना विराट जीत दिलाने में बहुत बड़ा रोल निभाया है. किसान ने जब अच्छे दिन की बात पर भरोसा किया, तो उसे लग रहा था कि पहले साल नहीं, दूसरे साल नहीं, तो तीसरे साल उसे उपज का वादे के अनुसार दाम मिलेगा. उसे सस्ती बिजली मिलेगी, उसे पानी मिलेगा, उसकी फसल को प्रोसेस करने का कारखाना उसके ब्लॉक में लगेगा. उसे कम से कम इतना पैसा मिल जाएगा, ताकि वो अपने बच्चे को पढ़ा सके और अपनी बेटी की शादी कर सके और थोड़ा इज्जत के साथ जीवन जी सके, लेकिन ऐसा हुआ नहीं. शायद इसलिए किसान प्रदर्शन कर रहे हैं, जिसका नेतृत्व भारतीय जनता पार्टी से जुड़े सांसद तक कर रहे हैं.

मैं सिर्फ और सिर्फ यह अनुरोध करना चाहता हूं कि किसानों के मन से अगर आशा की डोर टूट गई, तो नए सिरे से पूरे देश में आत्महत्या का दौर शुरू हो जाएगा. अभी जो किसान जंतर-मंतर पर अपना रोना लेकर आए हैं, यह वही जगह है जहां प्रधानमंत्री, प्रधानमंत्री बनने के बाद गए थे और उन्होंने वादा किया था कि मैं स्थिति को बदल दूंगा. पर दिल्ली ऐसी मनोहारी नगरी है कि ईमानदारी से वादा करने वाला भी जब दिल्ली आता है, तो सबकुछ भूल जाता है, चाहे वो सत्ता में हो या विपक्ष में. किसानों के सवाल को विपक्ष भी महत्वपूर्ण नहीं मानता. किसानों के सवाल पर विपक्ष आपस में बातचीत नहीं करता. किसानों के सवाल पर विपक्ष संघर्ष की योजना नहीं बनाता और किसानों के सवाल पर सांकेतिक अनशन या आंदोलन भी विपक्ष नहीं करना चाहता. किसानों की मूल समस्याओं को लेकर किसान सांसद तो कम से कम प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति के पास जा सकते हैं, पर ऐसा लगता है कि संसद में जाकर किसान अपने को किसान कहने में लज्जा महसूस करने लगता है. शायद तभी वो सरकार के सामने संगठित होकर अपनी बात नहीं कहता. किसानों की समस्याएं न भगवा हैं, न लाल हैं, न हरी हैं, न नीली हैं और न पीली हैं. किसानों की समस्याएं जिंदगी की समस्याएं हैं, जिसका कोई रंग नहीं है. उन समस्याओं को लेकर, सारे दलों के सांसद जिनका रिश्ता खेत से है, गांव से है, क्यों सरकार के ऊपर दबाव नहीं डालते? मनमोहन सिंह के दस साल बीत गए. उसके पहले अटल जी के आठ साल बीत गए. उससे पहले गुजराल साहब और देवेगौड़ा के एक-एक साल बीत गए. नरसिंहा राव के पांच साल बीत गए, लेकिन कभी किसानों के सवाल को लेकर सांसद एकजुट नहीं हुए. तो क्या संसद भवन में ही कुछ विलक्षण जादू है कि वहां अगर किसान जाता है तो भूल जाता है कि वह किसान है. हम प्रधानमंत्री जी से यह अनुरोध करते हैं कि किसानों की आशाओं को मरने मत दीजिए. आपने जो वादे किसानों से किए हैं, अगर वह आप पूरा कर देंगे तो देश का किसान मुस्कुराने लगेगा और जब किसान मुस्कुराएगा तभी देश मुस्कुराएगा, प्रधानमंत्री जी.■

editor@chauthiduniya.com

आर या पार

मणिपुर का संदेश

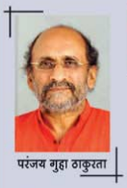

परंजय गुहा ठाकुरता

फर्जी मुठभेड़ मामले में सुप्रीम कोर्ट का आदेश नागरिकों के अधिकारों को फिर से स्थापित करने वाला है. मणिपुर में हुए फर्जी मुठभेड़ पर सुप्रीम कोर्ट ने जुलाई, 2016 में अंतरिम फैसला सुनाया था. केंद्र सरकार ने इसे चुनौती देने के लिए एक याचिका दायर की, लेकिन यह खारिज हो गया. एक ऐसे समय में जब सरकार राष्ट्रहित के नाम पर असीमित अधिकार पाने की कोशिश कर रही है, सुप्रीम कोर्ट का यह फैसला इस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने वाला है. मुख्य न्यायाधीश जेएस केहर की अध्यक्षता वाली पांच जजों की बेंच ने स्पष्ट तौर पर कहा कि आंतरिक संघर्ष को युद्ध जैसी स्थिति नहीं कही जा सकती और सरकार मणिपुर की स्थिति को युद्ध की स्थिति बताकर आगे नहीं बढ़ सकती. बेंच ने कहा कि संविधान में जिस आंतरिक संघर्ष का जिक्र किया गया है, मणिपुर में वही स्थिति है, न उससे अधिक और न उससे कम.

जिस मामले में अदालत ने 2016 में अंतरिम फैसला दिया था, उसे 2012 में मणिपुर के एक गैर सरकारी संगठन ईईवीएफएएम ने दायर किया था. इस संगठन ने 2000 से 2012 के बीच 1,582 मौतों को दर्ज किया था. इसके आधार पर अदालत में दायर याचिका में संगठन ने अदालत से स्वतंत्र जांच की मांग की थी. इसमें बताया गया था कि सैन्य बलों को अफस्पा के तहत जो विशेष अधिकार मिले हैं, उसका दुरुपयोग कर लोगों को प्रताड़ित किया जा रहा है और मारा जा रहा है. इस याचिका पर सबसे पहले अदालत ने न्यायमूर्ति संतोष हेगड़े की अध्यक्षता में छह मामलों की जांच के लिए एक समिति बनाई. इसने पाया कि ये सभी मामले में गैरन्यायिक हत्या के हैं.

याचिकाकर्ता की अपील पर अदालत ने मणिपुर के बाहर के पुलिस अधिकारियों की एक विशेष जांच दल का गठन किया है. इस जांच दल का काम है याचिका में दर्ज मामलों की जांच करना. मणिपुर के निवासियों और इरोम शर्मिला द्वारा अनशन कर अफस्पा हटाने की मांग के बीच 2014 में केंद्र सरकार ने न्यायमूर्ति बीपी जीवन रेड्डी की अध्यक्षता में

मणिपुर में 23 लाख लोगों को सैन्य बलों के कब्जे में रहना पड़ रहा है. वह भी सिर्फ 5000 आतंकवादियों से निपटने के नाम पर. ऐसे में अफस्पा और गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम को बरकरार रखने का क्या तर्क है? हमें यह याद रखना चाहिए कि कश्मीर में भले ही लोगों ने सरकार की नीतियों को खारिज कर दिया हो, लेकिन मणिपुर के लोग अभी भी इसे मान रहे हैं.

मणिपुर की स्थिति का अध्ययन करने के लिए एक समिति का गठन किया था. समिति ने यह कहा कि मणिपुर की स्थिति एक गंभीर बीमारी का लक्षण मात्र है. समिति ने यह सिफारिश की कि अफस्पा हटाया जाए और 1967 के गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम में भी संशोधन किया जाए, लेकिन ये सुझाव अब तक नहीं माने गए.

अब अदालत ने केंद्र की उस कोशिश को नाकाम कर दिया है जिसके तहत 2016 के अदालती फैसले की मूल भावना को चोट पहुंचाने की कोशिश हुई थी. अब इसमें कोई अस्पष्टता नहीं है कि सुरक्षा बलों को गैरन्यायिक हत्याओं के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है. मणिपुर का यह मामला दूसरे हिस्सों के लिए भी प्रासंगिक है. अदालत ने यह भी कहा है कि सेना का इस्तेमाल सिविल प्रशासन की मदद के लिए किया जा सकता है, लेकिन यह अनिश्चित काल तक नहीं चल सकता. अदालत ने यह भी कहा कि किसी अशांत क्षेत्र में लागू किसी नियम का उल्लंघन करते हुए अगर कोई व्यक्ति हथियार लेकर जा रहा हो तो उसे आतंकवादी या उग्रवादी नहीं करार दिया जा सकता. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है, 'अगर हमारे सैन्य बलों को सिर्फ संदेह या आरोप के आधार पर अपने देश के नागरिकों को मारने के लिए तैनात किया गया है और भर्ती किया गया है, तो न सिर्फ कानून का राज बल्कि लोकतंत्र भी खतरे में है.' यही कश्मीर और छत्तीसगढ़ में हो रहा है. न्यायमूर्ति मदन बी लोकुर और न्यायमूर्ति उदय ललित के इस फैसले का व्यापक प्रसार होना चाहिए.

अदालत ने सरकार के उस तर्क को नहीं माना, जिसमें कहा गया कि अगर सुरक्षा बलों को फर्जी मुठभेड़ों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया तो यह ऐसा होगा जैसे उनका एक हाथ पीछे बांधकर उन्हें संघर्ष में उतार दिया गया हो. सरकार अपने ही नागरिकों के साथ लड़ी जा रही हर आंतरिक लड़ाई में यही तर्क देती है. यह तर्क देते वक्त वह भूल जाती है कि उन इलाकों में रहने वाले लोगों के दोनों हाथ बंधे हुए हैं. मणिपुर में 23 लाख लोगों को सैन्य बलों के कब्जे में रहना पड़ रहा है. वह भी सिर्फ 5000 आतंकवादियों से निपटने के नाम पर. ऐसे में अफस्पा और गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम को बरकरार रखने का क्या तर्क है? हमें यह याद रखना चाहिए कि कश्मीर में भले ही लोगों ने सरकार की नीतियों को खारिज कर दिया हो, लेकिन मणिपुर के लोग अभी भी इसे मान रहे हैं. चुनावों में भारी संख्या में मतदान इसकी गवाही दे रहा है, फिर भी भारत सरकार यह नहीं समझ पा रही है कि आम मणिपुरी नौजवान शांति से अपना जीवन गुजारना चाहता है. लोगों को यह संदेश दिया जा रहा है कि आपका मतदान आपको नागरिकता देता है, लेकिन हम अपनी ताकत से आपको नागरिक नहीं मानेंगे. इससे देश के सभी लोगों को चिंतित होना चाहिए, चाहे वे संघर्ष क्षेत्र में रह रहे हों या नहीं.■

(लेखक इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली के संपादक हैं.)

feedback@chauthiduniya.com

तीन साल देश का हाल

मेक इन इंडिया MAKE IN INDIA

मेक इन इंडिया, एफडीआई, स्टार्टअप इंडिया और ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस

बेहाल व्यापार, कैसे बहे विकास की बयार

शफ़ीक़ आलम feedback@chauthiduniya.com

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने केंद्र की सत्ता संभालने के फ़ौरन बाद सितम्बर 2014 में अपनी महत्वाकांक्षी योजना मेक इन इंडिया की शुरुआत की थी. इस योजना का उद्देश्य भारत को एक ग्लोबल मैन्युफैक्चरिंग एवं निर्यात हब में तब्दील करना और युवाओं को रोज़गार के अवसर भी उपलब्ध करवाना है. 2014 में ही ऐतिहासिक लालकिले से अपने 15 अगस्त के भाषण में प्रधानमंत्री ने मेक इन इंडिया का प्रारूप पेश करते हुए दुनिया भर के उद्यमियों को भारत में अपने उद्यम लगाने का आह्वान किया था. उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि आप भारत आइए, यहां निर्माण कीजिए और दुनिया के किसी भी देश में ले जा कर बेचिए. हमारे पास कौशल है, प्रतिभा है, अनुशासन है और कुछ कर गुजरने की इच्छा शक्ति है. लालकिले के भाषण के बाद प्रधानमंत्री ने एक के बाद एक कई विदेश दौरे किए. उन दौरों में उन्होंने अन्य बातों के अलावा विदेशी कंपनियों को भारत में अपने मैन्युफैक्चरिंग प्लांट लगाने और भारत में निवेश करने की दावत भी दी. इस क्रम में व्यापार करने में आसानी (इज ऑफ डूइंग बिज़नस) की भी बात की गई.

सरकारी आंकड़ों के मुताबिक मेक इन इंडिया की शुरुआत से लेकर अब तक यानि वर्ष 2014-15 से लेकर वर्ष 2016-17 तक देश में कुल 9208.44 करोड़ डॉलर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) आया है. वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के मुताबिक इस अभियान के तहत वर्ष 2014-15 में 1623.91 करोड़ डॉलर का, वर्ष 2015-16 के दौरान 4000 करोड़ डॉलर का और वर्ष 2016-17 में 3584.43 करोड़ डॉलर का एफडीआई आया है. यदि देश के लिहाज़ से देखा जाए, तो सबसे अधिक 2598.39 करोड़ डॉलर का एफडीआई मॉरिशस से आया और 2511 करोड़ डॉलर के एफडीआई के साथ सिंगापुर दूसरे स्थान पर रहा. जबकि जापान से 800 करोड़ डॉलर, अमेरिका से 675.97 करोड़ डॉलर और ब्रिटेन से 265.37 करोड़ डॉलर का एफडीआई आया है. वहीं चीन से 116.37 करोड़ डॉलर, जर्मनी से 263.61 करोड़ डॉलर, साइप्रस से 127.66 करोड़ डॉलर और फ्रांस से 127.50 करोड़ डॉलर का विदेशी निवेश भारत आया है.

सरकार द्वारा जारी किए गए इन आंकड़ों में कई दिलचस्प और संदेहास्पद तथ्य मौजूद हैं. दिलचस्प तथ्य ये है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपना कार्यभार संभालते ही एक के बाद एक जिन देशों का दौरा किया था, उन में जापान, अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस को काफी महत्त्व दिया गया था. इन दौरों को भारतीय मीडिया ने गेम चेंजेर के रूप में पेश किया. इन देशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों द्वारा प्रधानमंत्री को दिए गए स्वागत सम्मान को बड़ा इवेंट बनाने की हर मुमकिन कोशिश की गई थी. इन्हीं कार्यक्रमों के महेनजर भारतीय मीडिया को प्रधानमंत्री मोदी में एक रॉक स्टार की छवि दिखाई दी थी. अपने समकक्षों के साथ बातचीत और ब्रिटेन की संसद और अमेरिका की सीनेट में उनके संबोधन को उन देश के नेताओं के साथ उनकी अच्छी केमिस्ट्री के तौर पर पेश किया गया. लेकिन उपरोक्त आंकड़ों पर नज़र डालते ही ये पता चल जाता है कि जिन देशों को इतना महत्व दिया गया, वहां से मेक इन इंडिया के लिए कितना निवेश आया और परम्परागत रूप से जिन देशों के जरिए भारत में निवेश आता था वहां से कितना निवेश आया. अमेरिका, जापान, ब्रिटेन और फ्रांस यहां तक कि चीन के निवेश पर गौर किया जाए, तो लगता है कि ये देश मेक इन इंडिया में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखा रहे हैं. इसमें संदेह पैदा करने वाले तथ्य ये हैं कि मॉरिशस और सिंगापुर से आने वाला एफडीआई अमेरिका, जापान, ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों से कई गुना ज्यादा है. गौरतलब है कि मॉरिशस और सिंगापुर टैक्स हैवन के तौर पर पहले से ही बदनाम हैं. लिहाज़ा, इन देशों से सबसे अधिक निवेश आना आश्चर्यजनक नहीं है. 2016 में भारत ने मॉरिशस के साथ 1983 के डबल टैक्सेशन अवॉइडेंशन कन्वेंशन (डीटीएसी) में बदलाव के समझौते पर हस्ताक्षर किया है, जो अप्रैल 2017 से लागू है. सिंगापुर से भी भारत इसी तरह के समझौते की कोशिश कर रहा है. इन समझौतों के बाद इन देशों से कितना निवेश आता है ये देखना दिलचस्प होगा.

लेकिन अब सवाल यह उठता है कि क्या मॉरिशस और सिंगापूर के रास्ते आया हुआ निवेश भारत का ही काला धन तो नहीं है? जो एक दूसरा सवाल इन निवेश के आंकड़ों से खड़ा होता है, वो ये कि जब तक अमेरिका, जापान, ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी जैसे तकनीकी रूप से उन्नत देश भारत में निवेश करने के लिए आगे नहीं आएंगे, तब तक प्रधानमंत्री का मेक इन इंडिया कैसे सफल होगा? मेक इन इंडिया से जुड़ा हुआ एक और पहलू व्यापार में आसानी भी है. जिसमें भारत का प्रदर्शन लगभग ज्यों का त्यों बना हुआ है.

ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस

ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस (ईओडीबी) इंडेक्स वर्ल्ड बैंक ग्रुप द्वारा स्थापित रैंकिंग प्रणाली है. इसमें उच्च रैंकिंग का मतलब होता है आसान एवं बेहतर विनियमन और संपत्ति के अधिकारों की सुरक्षा का मज़बूत आधार. इसके इंडेक्स के लिए 189 देशों से आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं, जो व्यापार विनियम के 10 क्षेत्रों से लिए गए होते हैं. ये क्षेत्र हैं- व्यापार की शुरुआत, निर्माण परमिट, ऊर्जा की सहूलियत, प्रॉपर्टी की रजिस्ट्री, कर्ज की सहूलियत, छोटे निवेशकों की रक्षा आदि. इन मानकों पर भारत दुनिया के 189 देशों में 130वें स्थान पर है. मेक इन इंडिया की वेबसाईट पर जो जानकारी दी गई है, उसमें कहा गया है कि 2015 में ईओडीबी की रैंकिंग में भारत 134वें स्थान पर था. जो अब दो साल बाद 130वें स्थान पर पहुंच गया. वेबसाइट पर इसे असाधारण सुधार कहा गया है. गौरतलब है कि भारत ने ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस के लिए कई क़दम उठाए हैं. इसके तहत दिल्ली नगर निगम और मुंबई महानगर निगम ने निर्माण के लिए त्वरित स्वीकृति प्रणाली शुरू की है, ताकि कंपनियों को निर्माण कार्य में कोई असुविधा न हो. सीमा व्यापार को आसन बनाया गया है. व्यापार में सहूलियत के लिए सरफेसी (द सेक्यूरिटाइजेशन एंड रिकंस्ट्रक्शन ऑफ सेक्यूरिटी इंटेरेस्ट) एक्ट, 2002 में संशोधन किया गया. उसी तरह ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस के अन्य मानकों को ध्यान में रख कर सरकार ने कई प्रावधान किए हैं, लेकिन इसके बावजूद भारत को अपनी रैंकिंग सुधारने के लिए अभी काफी दूरी तय करनी है. आम तौर पर कहा जाता है कि कोई भी उद्यमी, खास तौर पर विदेश उद्यमी किसी देश में व्यापार के लिए बेहतर माहौल देख कर निवेश करता है. जहां तक भारत में व्यापार के लिए माहौल का सवाल है, तो सरकार कोशिश तो कर रही है, लेकिन इस संदर्भ में विजय माल्या प्रकरण और सुब्रत राय सहारा प्रकरण अच्छी तस्वीर पेश नहीं करते. ये सवाल अक्सर उठता है कि जब भारत अपने ही उद्यमियों के साथ ऐसा सलूक करता है, तो फिर विदेश उद्यमियों के साथ कैसा सलूक होगा?

रही बात ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नस के रैंकिंग की, तो इसका एक अन्य दिलचस्प पहलू ये भी है कि नेपाल, भूटान, कीनिया, इंडोनेशिया, फिजी, घाना, श्रीलंका और ईरान जैसे देश भारत से आगे हैं. यदि मेक इन इंडिया को कामयाब बनाना है, तो भारत को एक तरफ जहां ईओडीबी की रैंकिंग में सुधार की आवश्यकता है, वहीं दूसरी तरफ पब्लिक सेक्टर में सरकारी निवेश की भी ज़रूरत है. मोदी सरकार ने रोज़गार के जो वादे किए हैं, उसके लिए विदेशी कंपनियों पर आश्रित रहने से काम नहीं चलेगा. मेक इन इंडिया के तहत विकसित देशों से आए एफडीआई के आंकड़े बताते हैं कि विकसित देश भारत में अपने मैन्युफैक्चरिंग यूनिट लगाने में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखा रहे हैं. यहां उन्हीं सेक्टर्स में निवेश हुआ है, जिनमें भारत पहले से ही आगे है.

स्किल इंडिया

देश में कौशल विकास का कार्यक्रम यूपीए सरकार के शासनकाल से ही शुरू हो गया था. यूपीए सरकार ने 2022 तक 15 करोड़ युवाओं में कौशल विकास का लक्ष्य रखा था. 15 जुलाई 2015 को स्किल इंडिया योजना की शुरुआत करते हुए मौजूदा सरकार ने इस लक्ष्य को बढ़ा कर 40 करोड़ कर दिया. इस बढ़ोतरी की वजह प्रधानमंत्री का वो चुनावी वादा हो सकता है, जिसमें उन्होंने युवाओं को रोज़गार देने की बात कही थी. ज़ाहिर है, इस मामले में सरकार की नियत पर शक नहीं किया जा सकता, क्योंकि जिस देश की आबादी का 65 प्रतिशत हिस्सा युवा हों वहां इस तरह के स्कीम की ज़रूरत है. लेकिन केवल योजना बना देने से या उसको शुरू कर देने से ही काम नहीं चलता. इस योजना के तहत अब तक जो आंकड़े सामने आए हैं, उनसे ज़ाहिर होता है कि सरकार ने जल्दबाजी में इस योजना को एक व्यापक रूप दे दिया और उसके बाद आंकड़ों की लीपा-पोती में लग गई.

शुरुआत में स्किल इंडिया के लिए 1,500 करोड़ रुपए का बजट रखा गया था. इसका लक्ष्य 24 लाख नौजवानों को कौशल विकास का प्रशिक्षण देना था. लेकिन योजना के पहले चरण में केवल 5 प्रतिशत प्रशिक्षत नौजवानों का ही प्लेसमेंट हो सका, वो भी कम-कौशल की नौकरियों में. जबकि इस योजना की नोडल एजेंसी, नेशनल स्किल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन (एनएसडीसी) ने इसके लिए 1,000 करोड़ रुपए दिसम्बर 2016 तक जारी कर दिए थे. वांछित नतीजे नहीं आने के बावजूद सरकार ने स्किल इंडिया के वर्तमान वित्तिय वर्ष के बजट को बढ़ा कर 6,000 करोड़ रुपए कर दिया है. गौर करने वाली बात ये है कि 2022 तक के 40 करोड़ के लक्ष्य को घटा कर 15 करोड़ कर दिया गया है.

रोज़गार एवं प्रशिक्षण महानिदेशालय (डीजीईटी) के पूर्व अध्यक्ष शारदा प्रसाद की अध्यक्षता वाले सरकारी पैनल ने अपनी रिपोर्ट में प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पीएमकेवीवाई) के क्रियान्वयन पर एनएसडीसी को कठघरे में खड़ा किया है. उन्होंने टिपण्णी की है कि पीएमकेवीवाई यूपीए सरकार के नक्शेकदम पर चल रही है और प्राइवेट वोकेशनल इंस्टिट्यूट की जेबें गर्म कर रही है. एनएसडीसी द्वारा जारी किए गए आंकड़े भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं. एनएसडीसी के मुताबिक पिछले वर्ष 20 लाख युवाओं को पीएमकेवीवाई के तहत प्रशिक्षित किया गया. इसमें एक दिलचस्प आंकड़ा ये है कि केवल 34 संस्थानों ने (जो कुल अनुबंधित संस्थाओं का केवल 0.2 प्रतिशत है) लगभग 40 प्रतिशत अभ्यर्थियों का कौशल विकास कर दिया. ज़ाहिर है, ये केवल आंकड़ों का खेल है और इन आंकड़ों में कई झोल हैं. यहां इस तथ्य पर भी गौर करना जरूरी है कि जनवरी 2016 में जारी एस्पाइरिंग माइंड नेशनल एम्प्लोयबीलिटी रिपोर्ट में कहा गया था कि देश के इंजीनियरिंग कॉलेजों से पास होने वाले 80 प्रतिशत से अधिक इंजिनियरों को नौकरी नहीं दी जा सकती. अब ऐसे में यदि इंजीनियरिंग कॉलेजों से कुशल इंजीनियर नहीं निकल रहे हैं, तो टूटे-फूटे बुनियादी ढांचे के साथ वोकेशनल कॉलेजों से कुशल कारीगर की उम्मीद कैसे कर सकते हैं. ज़रूरत इस बात की है कि सरकार अपनी नीति की समीक्षा करे और ज़मीनी स्तर पर चीज़ों को ठीक कर के ही इस दिशा में आगे बढ़े.

स्टार्टअप इंडिया

नया उद्यम शुरू करने वाले कारोबारियों के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 16 जनवरी 2016 को स्टार्टअप इंडिया योजना की शुरुआत की. इस योजना के लिए 10,000 करोड़ रुपये के बजट का प्रावधान किया गया. स्टार्टअप उद्यमियों के लिए तीन साल के टैक्स अवकाश, पूंजीगत लाभ में टैक्स से छूट, इंस्पेक्टर राज से मुक्त व्यावसायिक परिवेश और अन्य कई तरह के प्रोत्साहनों की भी घोषणा की गई थी. हालांकि स्टार्टअप योजना शुरू हुए अभी केवल एक साल हुए हैं और इतनी जल्दी इससे किसी अच्छे नतीजे की उम्मीद रखना जल्दबाजी होगी. लेकिन स्टार्टअप से जुड़ी जो रिपोर्ट्स आ रही हैं, वो उत्साहजनक नहीं हैं. अब तो कई संस्थाओं ने इसकी असफलता के कारण भी तलाशने शुरू कर दिए हैं.

2014 और 2015 में स्टार्टअप्स की संख्या में आई उछाल के बाद 2016 में नए स्टार्टअप की संख्या में न केवल कमी आई, बल्कि स्टार्टअप के बंद होने की संख्या में 50 प्रतिशत वृद्धि भी दर्ज की गई. ट्रक्शन नामक संस्था के मुताबिक 2016 में 212 स्टार्टअप बंद हुए, जबकि एक साल पहले ये संख्या 144 थी. आईबीएम द्वारा कराए गए एक अध्ययन में पाया गया कि 100 उद्यम पूंजी निवेशकों (वेंचर कैपिटल इन्वेस्टर्स) में से लगभग दो तिहाई मानते हैं कि भारत में स्टार्टअप को मिल रही नाकामी का कारण व्यापार में अनैतिक आचरण है. जबकि दूसरी अन्य संस्थाओं ने इसके लिए कमज़ोर कॉर्पोरेट नियमन और उद्यम अनुभवहीनता को दोषी बताया है. समीक्षक मानते हैं कि 2017 में भी इसमें कमी दर्ज की जा सकती है. हालांकि कई विशेषज्ञ स्टार्टअप के भविष्य को लेकर आशान्वित हैं. उनका मानना है कि भले ही आज स्टार्टअप के नतीजे उत्साहजनक नहीं हैं, लेकिन सरकारी सहायता इसमें सहयोगी साबित होगी और आने वाले समय में इसके अच्छे परिणाम देखने को मिलेंगे.■

feedback@chauthiduniya.com

मेक इन इंडिया के तहत भारत में आया एफडीआई

वर्ष	एफडीआई (अमेरिकी डॉलर)
2014-15	1623.91
2015-16	4000
2016-17	3584

स्रोत: वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय

मेक इन इंडिया के तहत विभिन्न देशों से आए एफडीआई

देश	एफडीआई (अमेरिकी डॉलर)
मॉरिशस	2598.39
सिंगापुर	2511
जापान	800
अमेरिका	675.97
ब्रिटेन	675.97
जर्मनी	263.61
चीन	116.37
साइप्रस	127.66
फ्रांस	127.50

स्रोत: वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय

ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस पर तीन वर्ष में कितना फर्क पड़ा

वर्ष	2015	2016	2017
भारत की रैंकिंग	134	131	130

पूर्वोत्तर का विकास

आधी हक़ीक़त आधा फ़साना

एस. बिजेन सिंह

पूर्वोत्तर भारत के विकास की गति देश के बाकी हिस्सों की अपेक्षा बहुत धीमी है. इंटरनेट और सोशल मीडिया के दौर में भी सरकार की कल्याणकारी योजनाओं की जानकारी वहां देर से पहुंचती है, लाभ तो दूर की बात है. कह सकते हैं कि 100 साल पहले वहां की जो स्थिति थी, वही आज भी है. सड़क एवं रेल मार्ग वहां विलंब से पहुंचने के कारण पूर्वोत्तर का यह हिस्सा शेष भारत से कटा सा लगता है. विडंबना यह है कि पिछले साल 2016 को अरुणाचल, मेघालय एवं त्रिपुरा तक रेल पहुंचा है. अब भी मणिपुर, मिजोरम एवं नगालैंड में रेल नहीं पहुंचा है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी बराबर कहते हैं कि अगर हम देश का विकास करना चाहते हैं, तो हमें पहले पूर्वोत्तर पर ध्यान देना होगा. उनके नेतृत्व वाली एनडीए सरकार के तीन साल पूरे हो चुके हैं. इस अवधि में कई सारी योजनाएं पूर्वोत्तर के लिए लागू की गईं. इन तीन सालों में पूर्वोत्तर का कितना विकास हुआ, इसकी पड़ताल करनी जरूरी है.

अनदेखी रह गई लुक ईस्ट पॉलिसी

पूर्व की ओर देखो नीति भारत द्वारा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के साथ आर्थिक और सामरिक संबंधों को विस्तार देने, भारत को एक क्षेत्रीय शक्ति के रूप में स्थापित करने और इस इलाके में चीन के प्रभाव को संतुलित करने के लिए बनाई गई थी. 1991 में नरसिंह राव सरकार द्वारा शुरू की गई इस नीति को विदेश नीति के परिप्रेक्ष्य में एक नई दिशा के रूप में देखा गया. इस नीति को आगे बढ़ाते हुए मोदी सरकार ने भारत-म्यांमार-थाईलैंड ट्राइलेट्रल हाईवे की योजना को आगे बढ़ाया. इस योजना के तहत भारत-म्यांमार-थाईलैंड-कंबोडिया होते हुए वियतनाम तक सड़क मार्ग के जरिए पहुंचा जा सकता है. इस ट्राइलेट्रल हाईवे को विकसित

करने के लिए ज्वाइंट टास्क फोर्स बनाया जा रहा है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का मानना है कि हम अब लुक ईस्ट पॉलिसी से एक्ट ईस्ट पॉलिसी की ओर बढ़ रहे हैं. विदेश मंत्रालय के एक अधिकारी बताते हैं कि इस योजना पर सात-आठ साल से काम चल रहा है. यह कोलकाता को सीधे थाईलैंड की राजधानी बैंकॉक से जोड़ देगा. लेकिन इस योजना के लिए पूर्वोत्तर राज्यों की सुरक्षा एवं उग्रवादी खतरा एक अहम चुनौती है. हकीकत यह है कि भारत ने म्यांमार को सड़क मार्ग से जोड़े जाने की अवधि आगे बढ़ा दी है.

एक अंग्रेजी अखबार के अनुसार, केंद्र सरकार ने भारत से म्यांमार में 150 किमी तक सड़क मार्ग (मणिपुर से म्यांमार के तामू कलेवा तक) के प्रोजेक्ट की अवधि को आगे बढ़ा दिया है. 2019 तक म्यांमार में दो बड़े यातायात प्रोजेक्ट का काम पूरा हो जाना था. इन प्रोजेक्ट्स में कलादान मल्टी मॉडल ट्रांसपोर्ट प्रोजेक्ट एवं इंडिया-म्यांमार-थाईलैंड का हाईवे शामिल था. तीन देशों से होकर गुजरने वाले हाईवे पर भारत ने 70 पुलों के निर्माण का वादा किया था. थाईलैंड ने अपना हिस्सा बना दिया है, वहीं बर्मा ने भी इसकी शुरुआत कर दी है. भारत इस मामले में पिछड़ गया है. इस पूरे मामले में एक बड़ी समस्या बेहतर प्रबंधन को लेकर भी है. जानकारी के मुताबिक इन प्रोजेक्ट्स को विदेश मंत्रालय के नए विकास योजना विभाग के अंतर्गत लगाया गया था. तीन देशीय सड़क मार्ग मोरेह (मणिपुर) से शुरू होकर मयी सोत (थाईलैंड) में खत्म होना है. भारत ने इस क्षेत्र में लगभग 130 किमी का मार्ग बना दिया है, लेकिन 30 किमी का मार्ग शेष रहते ही काम रोक दिया गया है. जबतक इस रोड प्रोजेक्ट को पूरा न किया जाएगा, तबतक एक्ट ईस्ट पोलिसी कैसे सफल होगी?

पूर्वोत्तर और सुरक्षा से जुड़े मसले

अरुणाचल प्रदेश की सीमा चीन से सटी होने के कारण काफी संवेदनशील है. चीनी घुसपैठ की समस्या पूर्वोत्तर ही नहीं, बल्कि पूरे भारत के लिए चिंताजनक है. अरुणाचल के पासीघाट में चुनावी रैली के दौरान मोदी ने कहा था कि यहां के लोग अकेले अपने दम पर चीन के खिलाफ डटे हैं. लेकिन चीनी घुसपैठ अभी तक नहीं रुकी है. हाल में तिब्बत के निर्वासित धर्मगुरु दलाईलामा के अरुणाचल आगमन के ठीक एक महीने पहले चीनी सेना बर्मा तक घुस आई थी. दलाईलामा के जाने के बाद बौखलाए चीन ने अरुणाचल प्रदेश के छह इलाकों का चीनी में नामकरण कर दिया था.

पूर्वोत्तर की सीमाएं चीन, म्यांमार, भूटान, बांग्लादेश और नेपाल से मिलती हैं. असम को अवैध आप्रवासियों ने बहुत नुकसान पहुंचाया है. राज्य के 27 जिलों में से नौ आप्रवासियों की समस्या से जूझ रहे हैं. विधानसभा की 126 में से 60 सीटों पर उनका प्रभुत्व कायम हो गया है. राज्य की वन्य भूमि पर किए गए अतिक्रमण में 85 प्रतिशत बांग्लादेशियों की भागीदारी है. इन क्षेत्रों में जनसंख्या में अस्वाभाविक वृद्धि अवैध आप्रवास के कारण हुई है. नगालैंड में भी बांग्लादेशी आप्रवासियों की तादाद बेतहाशा बढ़ी है. इससे स्थानीय लोग भयभीत हैं और असुरक्षा के कारण लोग गिरोहबंद हो रहे हैं. त्रिपुरा भी आप्रवासियों की समस्या से दो-चार हो रहा है. बांग्लादेशी शरणार्थियों के कारण त्रिपुरा के मूल लोगों की पहचान मिटने का खतरा पैदा हो गया है. इसी का परिणाम है कि सैकड़ों उग्रवादी संगठन अस्तित्व में आ गए हैं. मिजोरम में भी बाहरी-विरोधी भावनाएं विभिन्न छात्र आंदोलनों के रूप में दिखाई देती हैं.

अरुणाचल प्रदेश भारत-चीन विवाद में उलझकर रह गया है, जबकि केंद्र सरकार को अरुणाचल प्रदेश के समग्र विकास पर ध्यान देना चाहिए. केवल चुनाव के दौरान अपना सगा बताने से काम नहीं चलता, उसे विकास और समृद्धि के जरिए अपना बनाने का प्रयास करना होगा. अरुणाचल में जल विद्युत और खनिज संपदा की अपार संभावनाएं हैं. चीन ने अरुणाचल राज्य की सीमा से लगे अपने इलाकों में अनेक शहर बसाए हैं. वे इतने विकसित हैं कि अरुणाचल के लोगों को भी वे चीनी शहर लुभाते हैं. पूर्वोत्तर को भारत विरोधी संगठन भी अपना अड्डा मानते हैं. पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी पूर्वोत्तर को अपना सुरक्षित ठिकाना मानती है. भारत और बांग्लादेश के बीच 4096 किलोमीटर लम्बी सीमा पर सुरक्षा का कोई पुख्ता इंतजाम नहीं है. इस वजह से पूर्वोत्तर क्षेत्र में जनसंख्या का स्वरूप ही बदलता जा रहा है. भारत सरकार ने अगर गंभीरता से इस तरफ ध्यान नहीं दिया, तो पूर्वोत्तर को कश्मीर बनने में देर नहीं लगेगी.

यहां गूंजेगी रेल की सीटी, लेकिन कब...

पूर्वोत्तर में विकास की सबसे बुनियादी जरूरत है रेल एवं सड़क परिवहन का विकास. इसके अभाव में पूर्वोत्तर का विकास प्रभावित हो रहा है. प्रधानमंत्री पूर्वोत्तर को साउथ ईस्ट एशिया का गेटवे बनाना चाहते हैं. सात राज्यों में रोड एवं हाईवे को सुधारने के लिए 40 हजार करोड़ रुपए के निवेश की बात नीतीन गडकरी ने भी कही है. रेल की बात करें तो जिरिबाम से इंफाल तक की रेल परियोजना 110.63 किमी लंबी है. यह सिल्चर, हाफलोंग, लमडिंग एवं गुवाहाटी होकर इंफाल से गुजरेगी. इसकी अनुमानित लागत 6570.75 करोड़ रुपये है. इस परियोजना का कार्य अब तक 33 प्रतिशत ही हो पाया है. फेज वन (जिरि-तुपुल) मार्च 2018 तक एवं फेज टू (तुपुल-इंफाल) मार्च 2019 तक का लक्ष्य रखा गया है. लेकिन समस्या यह है कि करीब 33 अंडरग्राउंड उग्रवादी ग्रुप इस प्रोजेक्ट एरिया में सक्रिय हैं. आएदिन आर्थिक नाकेबंदी एवं बंद इन इलाकों में आम बात है. इस परियोजना में शामिल कर्मचारियों को उग्रवादी संगठन किडनैप कर लेते हैं. एनएच 37 की बुरी स्थिति होने के कारण परियोजना में इस्तेमाल होने वाले सामानों की आवाजाही में विलंब होता है. मेघालय की राजधानी शिलांग तक की रेल परियोजना की लंबाई 129.9 किमी है, जिसकी अनुमानित लागत 5804.14 करोड़ रुपए है. फेज वन में दिगारू-बैरनिहाट, जिसकी लंबाई 21.50 किमी है और अनुमानित लागत 496.24 करोड़ रुपए है. अब तक इस परियोजना पर 22 प्रतिशत ही काम हुआ है. फेज टू में बैरनिहाट-शिलांग तक की लंबाई 108.4 किमी है, जिसका टारगेट मार्च 2020 तक का है.

नगालैंड की राजधानी कोहिमा रेल परियोजना के तहत जुब्जा, राजधानी से 18 किलोमीटर आगे तक रेलवे लाइन बनना है. इसकी लंबाई 91.75 किमी है और इसकी अनुमानित लागत

2317 करोड़ रुपए है. इसका सर्वे पूरा हो चुका है. इस कार्य के पूरा होने का लक्ष्य मार्च 2020 तक रखा गया है. लेकिन नगालैंड में इनर लाइन परमिट लागू होने के कारण बाहरी लोगों को परमिट की आवश्यकता पड़ेगी. इंफाल को देश के रेलवे मैप पर लाने के प्रोजेक्ट के तीन साल देरी से चलने के साथ ही भारत सरकार अब तक मणिपुर-म्यांमार सीमा पर मौजूद पहाड़ी क्षेत्र मोरेह तक 110 किमी रेल ट्रैक को ले जाने की दिशा में भी कोई कदम नहीं उठा पाई है. जबतक मोरेह को रेल से जोड़ा नहीं जाएगा, तबतक म्यांमार के रेलवे सिस्टम से जुड़ने की बात संभव नहीं है. रेलवे अधिकारों का कहना है कि फिलहाल रेलवे को इंफाल के आगे ले जाने का कोई प्लान नहीं है. इंफाल मोरेह रूट का सर्वे किया गया है. मोदी सरकार जबतक इंफाल मोरेह रूट को म्यांमार रेलवे के साथ लिंक नहीं करेगी, तबतक ट्रांस एशियन रेलवे सपना ही रह जाएगा. मणिपुर के पास अभी केवल जिरिबाम तक ही रेल पहुंचा है, जो असम में 1.5 किलोमीटर लमडिंग-सिल्चर मीटर गेज खंड का ही विस्तार है. परियोजना के पहले चरण में जिरिबम-तुपुल के 84 किमी इलाके को शामिल किया गया है.

अफस्पा से जूझता पूर्वोत्तर

अफस्पा को लेकर समय-समय पर जम्मू-कश्मीर समेत पूर्वोत्तर के कई राज्यों से विरोध की आवाज उठती रही है. स्थानीय एवं केंद्र सरकार के बीच अफस्पा हमेशा एक विवाद का मुद्दा रहा है. असम में हाल में राज्य सरकार ने अफस्पा हटाने की कोशिश की, लेकिन केंद्र सरकार ने अफस्पा कानून के तहत पूरे असम को और तीन महीनों के लिए अशांत क्षेत्र घोषित कर दिया है. केंद्र ने यह कदम विद्रोही समूहों उल्फा (यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम), एनडीएफबी (नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड) और अन्य विद्रोही समूहों की विभिन्न हिंसक गतिविधियों का हवाला देते हुए उठाया है. गृह मंत्रालय ने इस फैसले को यह कहकर सही ठहराया है कि इन इलाकों में एनएससीएन (आईएम), एनएससीएन (के), उल्फा, एनडीएफबी जैसे गुट हिंसा फैला रहे हैं. एक तरफ राज्य सरकार कह रही है कि राज्य में हिंसा कम हो रही है, इसलिए अफस्पा हटाने की कोशिश की जा रही है, तो दूसरी तरफ केंद्र सरकार ने विद्रोही समूहों की विभिन्न हिंसक गतिविधियों का हवाला देते हुए अफस्पा को पूरे राज्य में तीन महीने बढ़ाने का फैसला लिया है. तीन जनवरी 2017 को नगालैंड में भी केंद्र सरकार ने अशांत राज्य बताकर अफस्पा छह महीने के लिए बढ़ा दिया था.

दूसरी तरफ मणिपुर में भी कई दशकों से इस कानून को हटाने को लेकर विरोध चल रहा है. वहां की 10 महिलाओं ने असम रायफल्स के सामने नंगा प्रदर्शन भी किया था. इरोम शर्मिला इस कानून के खिलाफ 16 साल तक आमरण अनशन कर चुकी हैं. इतना कुछ होने के बाद भी अफस्पा को लेकर केंद्र सरकार कोई कदम नहीं उठा रही है. राज्य की नवनिर्मित भाजपा सरकार भी अबतक अफस्पा हटाने को लेकर गंभीर नहीं है. सरकारी आंकड़ों के मुताबिक राज्य में 20 हजार ऐसी विधवाएं हैं, जिन्होंने अपना पति सशस्त्र संघर्ष में गंवा दिया है. 2007 से 2015 के बीच पूरे पूर्वोत्तर में 8830 हिंसक घटनाएं हुईं, जिनमें 2764 चरपंथी और 2148 आम नागरिक मारे गए. मिजोरम ही एकमात्र ऐसा राज्य है, जहां हिंसक घटनाएं एवं आम नागरिकों के मारे जाने का आंकड़ा सबसे कम है. केंद्रीय गृह राज्य मंत्री किरण रिजिजू ने यह कहकर कि अफस्पा राज्य सरकार की ईमानदार कोशिश से ही हटेगा, अपना पल्ला झाड़ लिया. अफस्पा की आड़ में हुई फर्जी मुठभेड़ को लेकर सुप्रीम कोर्ट में कई मामले की सुनवाई चल रही है. हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने भी स्पष्ट कह दिया है कि पूर्वोत्तर राज्यों में आर्मी के जवान ज्यादती कर रहे हैं. लेकिन आर्मी ने इसको सुप्रीम कोर्ट का भेदभावपूर्ण जवाब बताया है.

नगा शांति वार्ता में आख़िर हुआ क्या

तीन अगस्त 2015 को केंद्र सरकार और नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड (एम) के सचिव थुइंगालैन मुइवा के बीच एक एग्रीमेंट पर हस्ताक्षर हुए थे. इस युद्ध विराम समझौते की नींव वर्ष 1997 में पूर्व प्रधानमंत्री आईके गुजराल के कार्यकाल में पड़ी थी. लेकिन बीते 18 वर्षों में इस संदर्भ में कोई खास प्रगति नहीं हुई है. मोदी सरकार ने इस समझौते को एक ऐतिहासिक कदम बताया था. लेकिन इसका कोई नतीजा अब तक सामने नहीं आया है. केंद्र सरकार अब तक इस समझौते का

कोई मुख्य बिंदु नहीं बता रही है. राज्य सरकारों के पास भी इसकी कोई जानकारी नहीं है. गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने सिर्फ इतना बताया कि इस फ्रेमवर्क एग्रीमेंट में पड़ोसी राज्यों का पूरा ख्याल रखा गया है. सवाल यह है कि क्या केंद्र सरकार नगाओं की मांगें पूरी करके इस क्षेत्र में शांति स्थापित कर पाने में सफल होगी? मुइवा की मांग एक वृहद नगालैंड की है, जिसमें पड़ोसी राज्यों, मणिपुर के चार जिले, अरुणाचल प्रदेश के दो जिले और असम के दो पहाड़ी जिले भी शामिल हैं. इस मांग को लेकर तीनों राज्यों में विरोध चल रहा है. आखिर केंद्र सरकार इस एग्रीमेंट को गुप्त क्यों रखना चाहती है? नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड (एम) और केंद्र सरकार के बीच जारी यह वार्ता तभी शांति वार्ता कहलाएगी, जब इस समझौते में पड़ोसी राज्यों का भी समुचित ख्याल रखा जाएगा, अन्यथा पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में खून-खराबे की स्थिति पैदा हो सकती है. ■

sbijensngh@gmail.com

बासी वादों का बेनूर जश्न

26 मई को मोदी सरकार के तीन साल पूरे हो चुके हैं. इस दौरान सरकार ने कई घोषणाएं की, हुआ यूं कि इन ढेरों वादों को पूरा करने के लिए कार्यक्रमों के ऐलान में ही अधिकतर समय बीत गया.

3 साल देश का हाल

चंदन राय

कांग्रेस ने '3 साल 30 तिकड़म' नाम से एक वीडियो जारी कर सरकार पर तमाम मोर्चों पर नाकाम होने का आरोप लगाया है. ऐसे में सरकार के दावों की पड़ताल जरूरी है. इस रिपोर्ट कार्ड में जहां ऊर्जा और सड़क परिवहन मंत्रालयों की स्थिति कुछ बेहतर दिखती है, तो वहीं शिक्षा, स्वास्थ्य व रेल जैसे मंत्रालय रेंगते नजर आते हैं.

कब तक छंटेगा गांवों का अंधेरा

मोदी सरकार ने आजादी के 70 साल बाद भी बिजली से महरूम रहे 18,452 गांवों को 2018 तक रौशन करने का वादा किया था. इससे पूर्व बिजली से वंचित इन गांवों को दिसंबर 2017 तक रौशन करने की योजना थी. अगर जमीनी स्तर पर देखें तो अक्टूबर 2016 तक 7500 गांवों तक रौशनी नहीं पहुंची थी, जबकि 6300 गांवों में बिजली के खंभे व तार लगाने के काम शुरू हो गए थे. ऐसे में यह उम्मीद करना बेमानी होगा कि एक साल में इन गांवों तक बिजली पहुंच जाएगी. ऊर्जा मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी का कहना है कि 60 प्रतिशत काम पूरा होने में ही करीब डेढ़ साल लग जाएंगे. दिसंबर 2017 तक तो यह काम पूरा होना असंभव है. झारखंड, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, ओडीशा जैसे कई राज्य अपने गांवों को रौशन करने में विशेष रुचि नहीं दिखा रहे हैं. हालांकि ऊर्जा मंत्री पीयूष गोयल दावा कर रहे हैं कि 750 दिनों में बाकी बचे गांवों तक भी बिजली पहुंचा दी जाएगी. सरकारी वेबसाइट पर भी यह दावा किया जा रहा है कि देश के 99.3 प्रतिशत गांवों तक बिजली पहुंचा दी गई है. गोयल का यह भी कहना है कि बिजली किल्लत की जगह भारत अब बिजली आधिक्य वाला देश बन गया है. सरकारी दावे चाहे जो हों, लेकिन गांवों में बिजली पहुंचे और लोगों को समुचित बिजली की सप्लाई हो, इसमें अभी वर्षों लगेंगे.

हालांकि मोदी सरकार के 3 साल पूरे होने पर एक राहत भरी खबर आई है. भारत बिजली सुविधा के मामले में 2014 में विश्व बैंक की रैंकिंग में 99वें स्थान पर था, जो अब 2017 में 26वें स्थान पर आ गया है. गत दो साल में मौजूदा पारंपरिक बिजली क्षमता में 20 फीसदी वृद्धि हुई है और सौर बिजली क्षमता में 15 प्रतिशत वृद्धि हुई है.

सौर ऊर्जा में लक्ष्य से पीछे

यूपीए सरकार ने 2020 तक देश की सौर ऊर्जा क्षमता 20 हजार मेगावाट करने का लक्ष्य तय किया था. मोदी सरकार ने सत्ता में आते ही इसे एक लाख मेगावाट कर दिया. इसका मतलब यह है कि 100 गीगावाट के अपने लक्ष्य को पाने के लिए भारत को अगले सात साल तक हर साल 14 हजार मेगावाट सौर बिजली का उत्पादन करना होगा. जबकि पिछले 5 साल में भारत ने स्थापित सौर ऊर्जा में सिर्फ 2000 मेगावाट का ही इजाफा किया है. सवाल यह है कि सरकार एक तरफ सौर ऊर्जा को बढ़ावा देने पर जोर दे रही है, वहीं इस पर दी जा रही 30 प्रतिशत सब्सिडी को कम कर 15 प्रतिशत कर दिया गया है. इतना ही नहीं, जहां सरकार पहले सोलर ऊर्जा उत्पादकों को 8 से 9 रुपए प्रति वाट का रेट देती थी, जो अब गिरकर 3.50 या 4 रुपए तक रह गया है. सरकार के इस कदम से वैकल्पिक उर्जा के उपयोग को लेकर आम लोगों में निराशा है.

लक्ष्य से कोसों दूर है सड़क निर्माण

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के मई, 2014 को सत्ता संभालने के दौरान सड़क एवं परिवहन क्षेत्र में बड़ी चुनौतियां थीं. सरकार ने सड़क निर्माण में तेजी लाने के लिए 2016-2017 में 22 किलोमीटर प्रतिदिन राजमार्गों का निर्माण किया, जबकि लक्ष्य 30 किलोमीटर प्रतिदिन था. 2015-16 में यह 16 किलोमीटर प्रतिदिन था. वहीं यूपीए सरकार के दौरान 2014-15 में यह 12 किलोमीटर प्रतिदिन था. आंकड़ों से स्पष्ट है कि 2016-17 के दौरान राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण में कुछ तेजी आई, लेकिन सरकार सड़क निर्माण में अब भी अपने लक्ष्य से काफी पीछे है. इस साल प्रतिदिन 41 किमी रोड बनाने का लक्ष्य रखा गया है.

सड़क व परिवहन मंत्री नीतीन गडकरी ने खुद स्वीकार किया है कि 16,271 किलोमीटर नेशनल हाईवे के ठेके दिए गए थे, जिनमें से 2016-17 में 8321 किलोमीटर का निर्माण किया गया. वे मानते हैं कि काम में अभी और तेजी लाने की जरूरत है. वहीं प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना के तहत 47,350 किमी सड़कों का निर्माण हुआ, जबकि यूपीए सरकार के दौरान 2013-14 में यह मात्र 25,316 किमी था. भारत में लगभग 47 लाख किमी लंबी सड़कों का जाल है. इनमें राष्ट्रीय राजमार्ग की लंबाई लगभग 58 हजार किलोमीटर है.

2017-18 के दौरान सरकार सड़क परिवहन और राष्ट्रीय राजमार्ग पर 64,900 करोड़ रुपए खर्च करेगी. यह 2016-17 से 24 प्रतिशत अधिक है. इसमें से 10,723 करोड़ रुपए रख-रखाव और मरम्मत पर खर्च होंगे, जबकि 54,177 करोड़ रुपए नए राजमार्गों और पुलों के निर्माण पर खर्च होंगे. इस प्रकार नरेंद्र मोदी सरकार नए राजमार्गों के निर्माण कार्यों पर मरम्मत से अधिक खर्च कर रही है.

रोड सेफ्टी पर लचर रवैया

सड़क हादसों में देश में हर साल डेढ़ लाख लोगों की जान चली जाती है. इनमें आधे से ज़्यादा 35 साल के नीचे के हैं. 2005 से 2015 के बीच सड़क हादसों में 14 प्रतिशत की वृद्धि हुई. वहीं इनमें होने वाली मौतों में 54 प्रतिशत की बढ़ोतरी हो गई, जबकि 2022 तक सड़क हादसों में होने वाली मौतों को आधा करने का लक्ष्य है. सरकार के तमाम प्रयासों के बाद भी सड़क हादसों में निरंतर वृद्धि हुई है. गौरतलब है कि सड़क दुर्घटनाओं से हर साल करीब 55 हजार करोड़ से 60 हजार करोड़ रुपए का नुकसान होता है, जो जीडीपी का तीन प्रतिशत है. जनवरी 2016 में सरकार ने हादसे रोकने के लिए सड़क सुधार पर 11 हजार करोड़ खर्च करने का ऐलान किया. सवा सात सौ से ज़्यादा ऐसी जगहों की पहचान की गई, जहां ज़्यादा हादसे होते हैं. अगले 5 साल में ऐसे सड़कों व चौराहों को दुरुस्त किया जाना है.

2014 में दिल्ली में जाम की समस्या से निपटने के लिए नई रिंग रोड बनाने की बात की गई थी. गडकरी ने केंद्रीय रोड रिसर्च इंस्टीट्यूट से जाम से निपटने के लिए विकल्प तैयार करने को कहा था. इसके बावजूद रिंग रोड निर्माण का काम अधर में है और रोड सेफ्टी व जाम को लेकर हालात जस के तस हैं.

जन औषधि केंद्र : लक्ष्य था तीन हज़ार, खुले एक हज़ार

सस्ते दर पर बेहतर क्वालिटी की दवा उपलब्ध कराने के लिए यूपीए सरकार ने 2008 में जन औषधि केंद्र खोले जाने की योजना बनाई थी. इसके बाद मोदी सरकार ने 2017 तक 3000 जन औषधि केंद्र खोले जाने पर जोर दिया. लेकिन फिलहाल 1000 जन औषधि केंद्र ही खुल सके हैं, जो सरकार के लक्ष्य से काफी कम हैं. सरकार ने अब रेलवे स्टेशनों पर 1000 जन औषधि केंद्र खोलने की घोषणा की है. रेलवे स्टेशनों पर जन औषधि केंद्र खुलने से इस योजना का प्रचार तो होगा, लेकिन अब भी दवा के लिए लोग बाजार या अस्पताल के आस-पास के मेडिकल स्टोर पर ही निर्भर हैं. ऐसे में रेलवे स्टेशनों पर इन केंद्रों के खुलने का फायदा कम, नुकसान ही ज्यादा नजर आता है. पहले भी बिक्री के अभाव में या दवा उपलब्ध नहीं रहने पर कई जन औषधि केंद्रों पर ताला लटक चुका है.

कैसे होगी 5 लाख डॉक्टर्स की कमी पूरी

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन के मानकों के अनुसार भारत में पांच लाख डॉक्टर्स की कमी है. डब्ल्यूएचओ के अनुसार भारत में 1700 लोगों पर एक डॉक्टर है, जबकि एक हजार लोगों पर एक डॉक्टर होने चाहिए. वहीं सरकार ने दिसंबर 2015 को बताया कि देश में प्रत्येक 1,681 मरीज पर एक डॉक्टर की उपलब्धता है. एक विशेषज्ञ का कहना है कि अगर पांच साल की अवधि तक हर साल सौ मेडिकल कॉलेज खुलेंगे, तभी 2029 तक देश में पर्याप्त डॉक्टर उपलब्ध हो सकते हैं.

ग्रामीण इलाकों में स्थित प्राइमरी हेल्थ सेंटर (पीएचसी) व कम्युनिटी हेल्थ सेंटर (सीएचसी) भी डॉक्टर और नर्सों की कमी से जूझ रहे हैं. भारत को पीएचसी में कम से कम 70 हजार एमबीबीएस डॉक्टर्स की जरूरत है. सरकार ने विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी को देखते हुए डॉक्टर्स की रिटायरमेंट उम्र बढ़ाकर 65 साल कर दी है. इसके अलावा शैक्षणिक सत्र 2017-18 के लिए मेडिकल स्नातकोत्तर में कुल 4,193 सीटों की बढ़ोतरी भी कर दी गई है. लेकिन जहां कई मेडिकल कॉलेज खोलने की जरूरत है, वहां कुछ मेडिकल सीटें बढ़ाकर या रिटायरमेंट की उम्र बढ़ाकर इस समस्या से निपटना मुश्किल है. गौरतलब है कि 30 जून, 2015 तक देश में 9,59,198 डॉक्टर पंजीकृत थे.

एम्स खुलें, तब तो हो इलाज

प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना (पीएमएसएसवाई) के पहले चरण में 6 एम्स खोले जाने थे. फिलहाल जोधपुर, रायपुर और भोपाल एम्स में यह विभाग शुरू नहीं हो सके हैं, जबकि पटना, भुवनेश्वर और ऋषिकेश में यह विभाग आंशिक रूप से शुरू हो चुके हैं. स्वास्थ्य मंत्री जेपी नड्डा ने कहा कि मंजूर हुए छह एम्स के निर्माण में देरी की वजह परियोजनाओं से संबंधित आधारभूत मसले हैं. इसके बाद सरकार ने दूसरे चरण में भी दस एम्स खोलने की घोषणा की है. इसके अलावा सरकार ने 2016 में दिल्ली एम्स की क्षमता दोगुनी करने की बात की थी, लेकिन यहां लोगों की भीड़ को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि हालात में कितना सुधार हुआ है. इसके अलावा 2016 में देशभर में 20 कैंसर इंस्टीट्यूट खोले जाने की घोषणा की गई थी, जिसपर अभी तक काम शुरू नहीं हो सका है. यह हाल तब है, जब पांच लाख लोग हर साल कैंसर से मरते हैं.

कालाजार पर क़ाबू पाने का लक्ष्य अधूरा

देश से कालाजार की जानलेवा बीमारी के उन्मूलन का लक्ष्य पूरा होने की संभावना एक बार फिर कमजोर होती जा रही है. मई 2016 तक इसके 2943 मामले सामने आ चुके हैं. स्वास्थ्य मंत्री दावा कर चुके हैं कि 2017 तक इसे समाप्त कर लिया जाएगा. हालांकि स्वास्थ्य विशेषज्ञ मौजूदा स्थिति को देखते हुए 2017 तक इस पर काबू पाने को मुश्किल बता रहे हैं.

इंटरनेशनल डायबिटीज फेडरेशन (आईडीएफ) के हवाले से नड्डा ने बताया कि 20 से 70 वर्ष के आयु वर्ग में 2014 में डायबिटीज के 6.68 करोड़ और 2015 में 6.91 करोड़ मरीज थे. 1980 से 2014 के दौरान भारत में डायबिटीज पीड़ित महिलाओं की संख्या में 80 फीसद की बढ़ोतरी हुई है.

दोगुनी हुई आईआईटी की फीस

मानव संसाधन मंत्रालय ने 2016 में आईआईटी की सालाना फीस 90 हजार से बढ़कर दो लाख कर दी. अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय आईआईटी छात्रों को ब्याज मुक्त ऋण प्रदान करने के लिए एक योजना लेकर आया है, ताकि छात्रों को फीस का भुगतान करने में मदद मिल सके.

2017 में प्रकाश जावड़ेकर ने घोषणा की है कि आईआईटी में लड़कियों की भागीदारी 8 से बढ़ाकर 20 फीसदी की जाएगी. अभी हाल ये है कि विभिन्न आईआईटी में दाखिले के लिए होने वाली संयुक्त प्रवेश परीक्षा (जेईई) में 4,500 लड़कियां पास करती हैं, वहीं उनमें से केवल 800 ही विभिन्न पाठ्यक्रमों में दाखिला ले पाती हैं. इसके अलावा सरकार ने स्वीकार किया कि कॉलेज से उत्तीर्ण होने के बाद मात्र 40 प्रतिशत इंजीनियरिंग स्नातकों को ही रोजगार मिल पाता है. मानव संसाधन विकास मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने कहा कि सरकार ने अगले पांच वर्ष में कम से कम 60 प्रतिशत इंजीनियरिंग छात्रों को रोजगार योग्य बनाने का लक्ष्य बनाया है.

डेढ़ दर्जन विश्वविद्यालयों में वीसी नहीं

जब स्मृति ईरानी मंत्री बनी थीं, तो कोई डेढ़ दर्जन विश्वविद्यालयों में वीसी के पद खाली पड़े थे, जिनमें में ज्यादातर अब भी खाली ही हैं. ईरानी के पदभार संभालने के एक साल बाद भी मंत्रालय कई उच्च पदों पर नियुक्तियां नहीं कर पाई है. मिसाल के तौर पर एआईसीटीई, एनसीईआरटी और सीबीएसई के चेयरमैन के पद खाली हैं. इन पदों पर नियुक्ति कब होगी, किसी को पता नहीं.

आईआईटी में 40 फीसदी कम फैकल्टी

प्रकाश जावड़ेकर ने हाल में बताया कि आईआईटी और केंद्रीय विश्वविद्यालयों में 40 फीसदी कम फैकल्टी सदस्य हैं. मंत्री ने स्वीकार किया है कि छात्रों को विश्वस्तरीय सुविधाएं और अवसंरचना उपलब्ध कराने के लिए हमारे पास समुचित फैकल्टी सदस्य नहीं हैं. ■

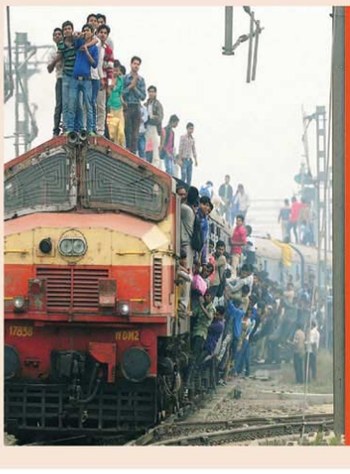

चुनौतियों की पटरी पर दौड़ती रेल

ट्रेन हादसे थमने की बजाय बढ़ते ही जा रहे हैं. इस साल अब तक छोटे-बड़े 80 हादसे हो चुके हैं, जबकि 2016 में इसी दौरान 69 हादसे हुए थे. रेलवे में सुरक्षा का कामकाज देखने वाले कर्मचारियों के 1.27 लाख पद खाली पड़े हैं. नतीजतन बाकी कर्मचारियों पर काम का भारी दबाव है. इससे भी रेल हादसे बढ़े हैं. रेल हादसों के लिए रेल मंत्री ने आईसीएफ डिब्बों को जिम्मेदार ठहराया है. रेलवे सूत्रों का कहना है कि पुराने डिब्बों को जर्मन तकनीक से बने एलएचबी डिब्बों से बदलने की प्रक्रिया इतनी धीमी है कि इसमें 25 से 30 साल लग जाएंगे. देश में हर साल मात्र 15 सौ एलएचबी डिब्बे बनते हैं. एलएचबी डिब्बों की खासियत यह है कि हादसे की स्थिति में यह एक-दूसरे पर नहीं चढ़ते. पहले सरकार ने वर्ष 2020 तक इन डिब्बों के सौ फीसदी इस्तेमाल का लक्ष्य तय किया था. रेल मंत्री सुरेश प्रभु ने इस साल रेल की पटरियों को अपग्रेड करने, नए ब्रिज बनाने और सिग्नल प्रणाली को आधुनिकतम बनाने के लिए वित्त मंत्रालय से 1.19 खरब रुपए मांगे थे. लेकिन कहा गया कि रेलवे को निवेश के लिए पहले ही काफी रकम दी जा चुकी है. ■

अल्पसंख्यकों को तीन साल में क्या मिला?

“अल्पसंख्यकों के संदर्भ में नरेंद्र मोदी सरकार के तीन वर्ष का विश्लेषण करते समय जो प्रश्न सबसे पहले मन में उठता है वो ये कि इस दौरान 172 मिलियन अर्थात कुल आबादी की 14.2 फीसदी मुस्लिम समुदाय समेत अल्पसंख्यकों को क्या मिला.”

ए यू आसिफ

मोदी सरकार का दावा है कि इसमें अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए केंद्रीय बजट में दी जा रही राशि को बढ़ाया गया है. इस संदर्भ में 2017-18 का बजट प्रस्तुत किए जाने के बाद केंद्रीय अल्पसंख्यक मंत्री मुख्तार अब्बास नकवी ने दावा किया था कि बहुत वर्षों के बाद अल्पसंख्यक कल्याण का बजट 395 करोड़ रुपए से भी अधिक बढ़ गया है. जबकि उनका दावा पूर्ण रूप से सही नहीं है. सबसे पहली बात तो यह है कि मोदी सरकार ने तीन वर्षों के दौरान चार बजट प्रस्तुत किए, जिनमें उनका पहला बजट उनके सत्ता में आने के तुरंत बाद का था. 2014-2015 के लिए इस अंतरिम बजट में अल्पसंख्यकों के लिए दी गई राशि 3089 करोड़ रुपए, उसी साल के पूर्व के मनमोहन सिंह सरकार के अंतरिम बजट में दी गई राशि 3511 करोड़ रुपए से 422 करोड़ रुपए अर्थात 16.76 प्रतिशत कम थी.

जहां तक मोदी सरकार द्वारा शेष तीन बजटों में अल्पसंख्यकों के लिए दी गई राशि के हर साल बढ़ाए जाने की बात है, वह तो मनमोहन सिंह सरकार के दौर में भी होता था. महत्वपूर्ण बात यह है कि अल्पसंख्यकों के लिए जो राशि दी जा रही है वह अन्य पिछड़े वर्गों एवं क्षेत्रों की तुलना में भी बहुत कम है. उल्लेखनीय है कि 2017-18 के केंद्रीय बजट में देश के कुल 19 प्रतिशत अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए जो राशि आवंटित की गई है, वो कुल बजट का मात्र 0.2 प्रतिशत है. महज इसकी बुनियाद पर अल्पसंख्यकों के सशक्तिकरण की बात सोचना ख़ामख़्याली और धोखा है.

इन सब का नतीजा यह है कि अल्पसंख्यक सामूहिक रूप से जीवन के हर क्षेत्र में पिछड़ते चले गए. एनजीओ सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज़ (एण्ड) की इंडिया एक्सक्लूज़िव रिपोर्ट 2016 को देखने पर और भी मायूसी होती है. एक शख्स ये जानकर हैरान रह जाता है कि चार पब्लिक गुड्स अर्थात जन क्षेत्रों जैसे वृद्धों के लिए पेंशन, डिजीटल तकनीक तक पहुंच, कृषि एवं अंडरट्रायल्स के लिए क़ानूनी इंसाफ़ के मामलों में अल्पसंख्यकों की पहुंच नहीं के बराबर है. ये दलितों, आदिवासियों एवं शारीरिक रूप से असमर्थों के साथ इन सहूलियतों से वंचित हैं.

जब मोदी सरकार गत तीन वर्षों में अपनी उपलब्धियों के दावे करते नहीं थक रही है, ऐसे में यह रिपोर्ट सरकार का मुंह चिढ़ा रही है. इस रिपोर्ट के अनुसार, इस समय 52.60 प्रतिशत मुसलमान भूमिहीन हैं. इस दौरान किए गए भूमि सुधारों से उन्हें कोई लाभ नहीं मिला है. इन वंचित वर्गों की पहुंच डिजीटल तक नहीं के बराबर है. यही कारण है कि गत वर्ष के अंत में मोदी सरकार द्वारा कैशलेस अर्थव्यवस्था पर जोर डालने के बावजूद डिजीटल सहूलियत से वंचित यह तबका पैसे के लिहाज से बुरी तरह से प्रभावित हुआ है. इसका इनकी अर्थव्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव पड़ा है.

अल्पसंख्यकों के विकास के दौर में पिछड़ जाने का अहसास एक ऐसे दौर में हुआ है, जब उनके सशक्तिकरण के लिए विभिन्न योजनाएं पहले से लागू हैं. सच तो यह है कि किसी भी योजना, विशेषकर अल्पसंख्यकों से जुड़ी योजनाओं की घोषणा के बाद उसके क्रियान्वयन तक एक लंबा समय बीत जाता है.

एक सवाल यह भी है कि अल्पसंख्यकों की शिक्षण संस्थाएं चाहे वो साधारण हों, औद्योगिक या फिर तकनीकी, उनकी निगरानी कौन करेगा? यह प्रश्न इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि अल्पसंख्यकों से संबंधित दो महत्वपूर्ण आयोग बहुत ही कठिन दौर से गुजर रहे हैं. इनमें से एक राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थान आयोग है, तो दूसरा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग. मोदी सरकार के आते-आते पहला आयोग बिना अध्यक्ष का हो गया. जस्टिस सोहैल एजाज़ सिद्दीकी का कार्यकाल समाप्त हो जाने के बाद से ही लगातार सवाल उठाए जा रहे हैं, लेकिन इन तीन वर्षों में किसी नए अध्यक्ष की नियुक्ति नहीं हुई है. जाहिर है कि अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों से संबंधित मामलों को देखना विशेष आयोग का काम है. अध्यक्ष की अनुपस्थिति में इसका काम बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है. दूसरा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग है. सात सदस्यीय इस आयोग में भी इस समय न कोई अध्यक्ष है और न ही कोई सदस्य. सभी की सदस्यता की अवधि समाप्त हो चुकी है. इस वर्ष के आरंभ में अध्यक्ष नसीम अहमद एवं अंतिम सदस्य दादी ई मिस्त्री, जो कि पारसी हैं, के रिटायर हो जाने के बाद संसद के कानून से बना यह राष्ट्रीय आयोग यतीम हो गया है. प्रश्न यह है कि इस स्थिति में अल्पसंख्यकों की सामूहिक स्थिति एवं अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों की खोज-खबर कौन लेगा और इनसे संबंधित समस्याओं को कौन देखेगा? उपरोक्त मंत्री महोदय कहते हैं कि इन दोनों आयोगों एवं अल्पसंख्यकों से संबंधित अन्य मुद्दों को लेकर उनका अल्पसंख्यक मंत्रालय सरकार को समय-समय पर सूचित करता रहता है. ये तमाम मुद्दे उसके विचाराधीन हैं.

जहां तक अल्पसंख्यकों से संबंधित योजनाओं का मामला है, उसकी सूची इतनी लंबी है कि इसे देखकर आप दंग रह जाएंगे. अल्पसंख्यक मंत्रालय के दावों का मामला तो और भी पेचीदा है. इन दावों के अनुसार जमीनी सतह पर कोई विकास या इम्पावरमेंट बिल्कुल ही नहीं दिखाई पड़ता है. उदाहरण के तौर पर मल्टीसेक्टोरल डेवलपमेंट प्रोग्राम (MSDP) एवं प्रधानमंत्री के 15 बिन्दुओं वाली योजना के अंतर्गत अल्पसंख्यकों के लिए बजट में दी गई राशि के विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि दी गई राशि का बड़ा भाग अल्पसंख्यकों के शिक्षा सशक्तिकरण को जाता है. आश्चर्य की बात यह है कि इसके बावजूद अन्य समुदायों की तुलना में अल्पसंख्यक समुदाय में शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ड्रॉप आउट अब भी बड़े पैमाने पर हो रहे हैं. अल्पसंख्यकों में मुसलमान ड्रॉप आउट में सबसे आगे हैं. अल्पसंख्यक मंत्रालय के अंतर्गत सामाजिक न्याय से संबंधित विभागीय समिति अपनी 32वीं रिपोर्ट में इस पर चिंता व्यक्त कर चुकी है कि आखिर स्कॉलरशिप प्रोग्राम, एमएसडीपी एवं 15 बिन्दुओं वाले प्रधानमंत्री प्रोग्राम के 10 वर्षों से चलने के बावजूद यह पिछड़ापन बढ़ता क्यों जा रहा है? इसके अलावा नेशनल सैंपल सर्वे ऑर्गेनाइज़ेशन (NSSO) ने भी स्कूल न जाने वाले बच्चों के बारे में अपनी 575 वीं रिपोर्ट में जो संख्या बताई है, वो बेहद चौंकाने वाली है.

सबसे आश्चर्यजनक बात तो ये है कि गत तीन वर्षों से जो बजट प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे पता चले कि सच्चर कमिटी की सिफारिशों को लेकर सरकार कितनी गंभीर है. सच्चर कमिटी की सिफारिशों में मुसलमानों से संबंधित विशिष्ट समस्याओं से निपटने के लिए शिक्षा, आर्थिक विकास एवं बुनियादी सहूलियतों पर विशेष ध्यान देने को कहा गया था. इस कमिटी ने इस सिलसिले में नेशनल डाटा बैंक, समान अवसर आयोग एवं डायवर्सिटी इंडेक्स की भी सिफारिश की थी, ताकि सरकारी संस्थाओं में नौकरी से वंचित मुसलमानों को विकास के दायरे में लाया जा सके. परन्तु इस संबंध में भी कुछ काम नहीं हो सका है. इन सभी तथ्यों से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के सबका साथ सबका विकास नारे की पोल खुल जाती है. साथ ही यह सच सामने आता है कि तमाम योजनाओं के बावजूद सरकार अल्पसंख्यकों के विकास एवं सशक्तिकरण को लेकर गंभीर नहीं है.■

feedback@chauthiduniya.com

आधुनिकीकरण से अधिकतर मदरसे अब भी वंचित

वसिम अहमद

भारत में मदरसों के आधुनिकीकरण योजना का ध्येय यह है कि आधुनिक तक़ाज़ों के अनुसार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाए. मोदी सरकार का दावा है कि इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए उसने बड़ा बजट रखा, जो 2016-17 में 294 करोड़ तक जा पहुंचा और जिसके नतीजे में देश के मदरसों में 77.85 प्रतिशत आधुनिकीकरण हुआ है. जबकि चौथी दुनिया की खोज से यह पता चलता है कि सच कुछ और ही है. इस आधुनिकीकरण से अधिकतर मदरसे अब भी वंचित हैं.

मदरसों की शिक्षा को बेहतर बनाने और उसके आधुनिकीकरण को लेकर सभी सरकारें सोचती रही हैं. इन सरकारों की सोच यह रही है कि मदरसों का आधुनिकीकरण कर छात्रों को आधुनिक ज्ञान से जोड़ा जाए, ताकि ये छात्र मुख्यधारा में शामिल हो सकें. इस ध्येय के लिए 2009-10 में डॉक्टर मनमोहन सिंह की सरकार ने मदरसों की शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए 46 करोड़ रुपए की मंज़ूरी दी थी, जिसे मोदी सरकार ने बढ़ाकर 2015-16 में 108 करोड़ रुपए एवं 2016-17 में 294 करोड़ रुपए कर दिया था.

2014 के संसदीय चुनाव के समय नरेन्द्र मोदी ने कहा था कि वो मुसलमान के एक हाथ में कुरआन देखना चाहते हैं तो दूसरे हाथ में कंप्यूटर. प्रधानमंत्री का यह कथन भारतीय मुसलमानों के लिए बहुत ही दिलचस्पी का विषय बना था. प्रधानमंत्री ने अपने 15 बिन्दुओं वाली योजना में इसको बड़े महत्व के साथ शामिल किया है. इन्होंने इन मदरसों को आधुनिक बनाने के लिए न सिर्फ विशेष ध्यान दिया, बल्कि इसके लिए बड़ी राशि भी आवंटित की है. सरकार के इस दावे की सच्चाई जानने के लिए चौथी दुनिया ने सांसद एवं अल्पसंख्यक संसदीय समिति के सदस्य मौलाना अस्सारूल हक़ क़ासमी से पूछा कि मदरसों के संबंध में सरकारी घोषणा की ज़मीनी हक़ीक़त क्या है? तब उन्होंने कहा कि इन तीन वर्षों में मात्र घोषणाएं ही हुई हैं, जमीनी सतह पर काम नहीं हुआ है. उन्होंने यह भी कहा कि हमने इस संदर्भ में केंद्रीय मंत्री प्रकाश जावड़ेकर से पूछा तो ये जवाब मिला कि बिहार के एदारा शरिया के अंतर्गत चल रहे पटना के मात्र एक मदरसे को फंड दिया गया है. अब जरा सोचिए कि जिस राज्य में हजारों मदरसे हैं, वहां मात्र एक मदरसे को फंड देकर ढिंढोरा पीटा जा रहा है कि मदरसों का आधुनिकीकरण हो रहा है.

उन्होंने कहा कि सरकार के दावों का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि सीमांचल में 204 मदरसे हैं. मनमोहन सरकार के दौरान मेनस्ट्रीम ग्राम (चडब्ल्यू) के अंतर्गत उस समय के अल्पसंख्यक मंत्री के रहमान खान के नेतृत्व में 149 मदरसों में निर्माण कार्य हुआ. बाक़ी मदरसों में कोड ऑफ कंडक्ट के कारण काम पूरा नहीं हो सका. इसके बाद मोदी की सरकार आ गई. हमने इन बाकी कामों को पूरा करने के लिए कई बार अपील की, लेकिन आज तक कुछ भी काम नहीं हुआ. उन्होंने कहा कि हमने वर्तमान बजट सेशन में भी मदरसों को फंड जारी करने के लिए कहा, मगर इस पर भी ध्यान नहीं दिया गया. सच तो यह है कि मोदी सरकार ने दावे तो खूब किए, मगर जमीनी स्तर पर इन दावों पर अमल नहीं हो रहा है. जब चौथी दुनिया ने यही सवाल पूर्व एमपी मोहम्मद अदीब से पूछा तो उन्होंने कहा कि व्यावहारिक रूप से कहीं भी सरकार का दावा सही नहीं दिख रहा है. गत तीन वर्षों में मोदी सरकार ने 90 प्रतिशत घोषणाएं ही की हैं, जिसका जमीनी सतह पर कोई अस्तित्व नहीं है. उन्होंने ये भी कहा कि सरकार अगर वास्तव में मदरसों के आधुनिकीकरण को लेकर गंभीर है, तो यह मदरसों में कम्प्यूटर एवं अंग्रेजी शिक्षकों को बहाल करे. परन्तु इन मदरसों के शासन को अपने हाथों में न ले.

इस संबंध में बंबई के अंजुमनुल इस्लाम के अध्यक्ष ताज मोहम्मद खां कहते हैं कि सरकारों का सारा ध्यान मदरसों के आधुनिकीकरण की ओर है. इसके नाम पर किसी मदरसे को एक दो कम्प्यूटर सेट देकर यह मान लिया जाता है कि सरकार ने अपनी जिम्मेदारी पूरी कर ली है. इस बार मदरसा आधुनिकीकरण योजना की खूब चर्चा हुई कि भाजपा सरकार ने दिल खोलकर फंड दिया है, लेकिन यह भी एक रिकॉर्ड है कि आज तक इस फंड के पूरे पैसे कभी इस्तेमाल नहीं हुए.

हाल में औरंगाबाद के आजाद अली शाह एजुकेशन सोसायटी के अंतर्गत चलने वाले सात मदरसों में से एक मदरसा हज़रत हज़ीमा जो कि हरसूल में स्थित है, के एक अधिकारी साजिद पाशा ने बताया कि मदरसा आधुनिकीकरण स्कीम के अंतर्गत इन्होंने सरकार को समय-समय पर कई सुझाव दिए थे, लेकिन उन्हें कोई मदद नहीं दी गई.■

feedback@chauthiduniya.com

मुस्लिम महिलाओं के लिए नई रौशनी योजना फ्लॉप रही

नई रौशनी अल्पसंख्यक महिलाओं के लिए लीडरशिप डेवलपमेंट का प्रोग्राम है, जिसे 2012-13 में प्रारंभ किया गया था. इसे गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाया जाना था मगर यह संस्था फंड की कमी की वजह से कोई उल्लेखनीय काम नहीं कर पाई. इस संबंध में नीति आयोग एवं एवैल्युएशन ऑर्गनाइज़ेशन (DMEO) ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि एक महत्वपूर्ण रुकावट यह रही कि नई रोशनी के अंतर्गत ट्रेनिंग प्रोग्राम चलाने के लिए अनुभवी गैर सरकारी संस्थाओं का चयन नहीं किया गया. उपरोक्त आयोग की रिपोर्ट के अनुसार चयन की गई गैर सरकारी संस्थाओं में से 55 प्रतिशत गैर सरकारी संस्थाओं के पास मात्र एक से दो वर्ष का अनुभव था एवं सिर्फ 30 प्रतिशत ही तीन वर्ष की शर्त को पूरा कर रहे थे.

उपरोक्त रिपोर्ट से यह मालूम होता है कि नई रौशनी योजना बिकट स्थिति में है. इस योजना का लक्ष्य यह था कि मुस्लिम महिलाओं को ज्ञान एवं तकनीक सिखाया जाएगा, ताकि वो सरकारी व्यवस्था, बैंकों एवं अन्य संस्थाओं से तमाम स्तरों पर संपर्क बना सकें. यही कारण है कि नीति आयोग ने निराशाजनक नतीजों के बावजूद नई रोशनी प्रोग्राम को जारी रखने की सलाह दी है. इस योजना की नाकामी से यह बात साबित हो जाती है कि मुस्लिम महिलाओं को भी मोदी सरकार के तीन वर्ष में कुछ नहीं मिला है.■

ज़मीन से ज्यादा आंकड़ों में चल रहा स्वच्छ भारत अभियान

जनता का पैसा, सरकार का प्रचार

निरंजन मिश्रा

मोदी सरकार तब शायद अपनी तीसरी सालगिरह के लिए आंकड़े दुरुस्त कर रही होगी, जब दिल्ली-हरिद्वार रेलखंड पर स्थित नजीबाबाद स्टेशन पर एक विदेशी पर्यटक की परेशानी स्वच्छता को लेकर सरकारी दावों की पोल खोल रही थी. बीते 14 मई को नजीबाबाद स्टेशन पर ट्रेन का इंतजार कर रहा एक विदेशी पर्यटक कुरकुरे का खाली रैपर लिए घूमता रहा, लेकिन उसे कोई डस्टबिन नहीं मिल सका, जिसमें वो खाली रैपर डाल सके. अंत में उसे रैपर को अपने पॉकेट में रखना पड़ा. ये परेशानी सिर्फ उस विदेशी पर्यटक की ही नहीं है, अपने आस-पास हम भी इस समस्या का सामना करते हैं. कई लोग सिर्फ इसलिए ही इधर उधर कूड़ा फेंक देते हैं, क्योंकि उन्हें जरूरत के समय डस्टबिन नहीं मिलता. हालांकि इसमें कोई शक नहीं कि मोदी सरकार द्वारा स्वच्छ भारत अभियान की शुरुआत के बाद लोगों में साफ-सफाई को लेकर जागरुकता बढ़ी है. लेकिन कई मोर्चों पर सरकार अपनी भागीदारी में पीछे है. जमीनी स्तर पर काम किए जाने की जगह आंकड़ों में सफलता दिखाने की होड़ ज्यादा है.

दावों से दूर हक़ीक़त

स्वच्छ भारत अभियान की वेबसाइट बताती है कि इस अभियान के अंतर्गत अब तक 31,14,249 निजी और 1,15,786 सार्वजनिक शौचालय बनाए जा चुके हैं. हालांकि देश के अलग-अगल भागों से शौचालय निर्माण में हुई अनियमितता और सिर्फ कागजों में शौचालय निर्माण की खबरें वेबसाइट पर दी गई इस संख्या पर संदेह खड़े करती हैं. वेबसाइट की मानें तो देश के 647 शहरों को खुले में शौच मुक्त घोषित किया जा चुका है. लेकिन इन दावों की पड़ताल हाल ही में आई एक रिपोर्ट से की जा सकती है. प्रधानमंत्री के संसदीय क्षेत्र वाराणसी के एक ब्लॉक बडगांव के 80 में से 15 पंचायतों को खुले में शौच से मुक्त घोषित किया गया है. लेकिन हाल ही में खबर आई थी कि उन सभी गांवों में लोग आज भी खुले में शौच जाते हैं. कारण ये है कि 3.36 करोड़ की लागत से यहां जिन 2,800 शौचालयों का निर्माण हुआ है, उनमें से कुछ तो सिर्फ कागजों पर ही बने हैं. जो बने हैं उनमें से अधिकतर सिर्फ ढांचा भर हैं, उनमें आज तक शौचालय का सीट नहीं लगा है. दरअसल, सरकारी अधिकारियों की तरफ से लोगों को निर्देश दिया गया था कि वे पहले शौचालय निर्माण करा लें, फिर राशि मिलेगी. ज्यादातर ग्रामिणों ने सरकारी दबाव में किसी भी तरह से रुपए की व्यवस्था कर शौचालय का ढांचा तो बनवा लिया, लेकिन सरकार की तरफ से मिलने वाली राशि की राह देखते रह गए. ये सिर्फ वाराणसी की ही सच्चाई नहीं है. छत्तीसगढ़ के अंदी में तो शौचालय निर्माण के लिए कर्ज लिए हुए पैसे ना चुका पाने के एवज में लोगों को महाजन के यहां बंधुआ मजदूर के रूप में काम करना पड़ रहा है. अक्टूबर 2016 में सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च द्वारा किए गए सर्वे में भी ये बात सामने आई थी कि सरकार जिन शौचालय निर्माण को लेकर अपनी पीठ थपथपा रही है, उनमें से 26 फीसदी सिर्फ कागजों पर ही बने हैं और निर्मित शौचालयों में से भी 36 फीसदी उपयोग के लायक नहीं हैं.

खुले में शौच की मिल रही है सज़ा

स्वच्छ भारत अभियान को लेकर किसी तरह डेड लाइन पूरा करने में जुटे अधिकारी शौचालय विहिन लोगों के साथ अपराधियों जैसा सलूक करने लगे हैं. छत्तीसगढ़ के अंदी गांव में शौच कर रही एक महिला की फोटो अधिकारियों ने सार्वजनिक कर दी, तो वहीं राजस्थान के सवाई माधोपुर के कलेक्टर ने खुले में शौच करने वालों को राशन से वंचित रखने का खुला फरमान दे दिया. शौचालय नहीं बनवाने के कारण अधिकारियों द्वारा मनरेगा स्कीम के फायदे से वंचित किए गए तमिलनाडु के तूतीकोरिन के एक 70 वर्षीय बुजुर्ग को तो अपना अधिकार पाने के लिए मद्रास हाई कोर्ट का शरण लेना पड़ा. वहीं, इंदौर में अधिकारियों ने ये व्यवस्था करा दी कि खुले में शौच करता कोई दिखे, तो मंदिर के लाउडस्पीकर से उसकी कमेंट्री की जाय.

कर से प्राप्त आय और खर्च	2015-2016	2016-2017
स्वच्छ भारत सेस	3,901.78 करोड़	----------
क्लीन इन्वायरन्मेंट सेस	13,847.87 करोड़	21,128.59 करोड़
स्वच्छता पर खर्च	2,400 करोड़	----------
स्वच्छता विज्ञापनों पर खर्च	162.50 करोड़	66 करोड़

स्वच्छता सर्वेक्षण की स्वच्छता ही संदेहास्पद

सरकार और व्यवस्था के लिए ये बेहद ही शर्मनाक है कि सफाई के मामले में किसी शहर को उच्च स्थान देने के लिए सर्वेक्षण अधिकारी घूस मांगें. स्वच्छता सर्वेक्षण की जिस रिपोर्ट के सार्वजनिक होने के बाद सरकार अपनी पीठ थपथपा रही है, उसके बारे में खबर आई थी कि सर्वेक्षण करने वाली टीम ने बेहतर रैंकिंग देने के लिए औरंगाबाद नगर निगम के अधिकारियों से रिश्वत मांगी थी. हालांकि मामला सामने आने के बाद क्वालिटी काउंसिल ऑफ इंडिया (क्यूसीआई) ने सर्वेक्षण करने वाली टीम को निलंबित कर दिया. लेकिन इस सच्चाई ने सर्वेक्षण की विश्वसनियता पर तो सवाल उठा ही दिया. इस सर्वेक्षण रिपोर्ट पर भी सवाल उठ रहे हैं. रिपोर्ट में दी गई कई शहरों की रैंकिंग उनकी असलियत से अलग है. लखनऊ, पटना और बनारस के बारे में जानने वाला कोई भी बता सकता है कि सफाई के मामले में इनका क्रम क्या हो सकता है. लेकिन रिपोर्ट में बनारस को पटना और लखनऊ से बहुत ऊपर रखा गया है. बनारस को जहां 32वें स्थान पर रखा गया है, वहीं लखनऊ को 269वां और पटना को 262वां स्थान मिला है.

स्वच्छता कर से मिले पैसे का इस्तेमाल प्रचार में

वित्त राज्य मंत्री संतोष गंगवार ने जुलाई 2016 में राज्यसभा में एक प्रश्न का जवाब देते हुए कहा था कि वित्त वर्ष 2015-16 में स्वच्छ भारत सेस से सरकार के पास 3,901.78 करोड़ रुपए आए. वहीं, इस साल 20 मार्च को कोयला और ऊर्जा राज्य मंत्री पियूष गोयल ने कहा था कि क्लीन इन्वायरमेंट सेस से भारत सरकार को वित्त वर्ष 2016-17 में 21,128.59 करोड़ रुपए मिले. इससे पहले के तीन वित्त वर्ष की बात करें, तो क्लीन इन्वायरन्मेंट सेस से 2015-16 में 13,847.87 करोड़, 2014-15 में 5,844.55 करोड़ और 2013-14 में 3217.13 करोड़ रुपए प्राप्त हुए. जुलाई 2016 में संतोष गंगवार ने स्वच्छता के नाम पर सरकार द्वारा किए गए खर्च का आंकड़ा भी दिया था. उनके अनुसार स्वच्छ भारत मिशन कार्यक्रम के तहत वित्त वर्ष 2015-16 में ग्रामीण क्षेत्र में 2,400 करोड़ रुपए खर्च किए गए, जबकि शहरी क्षेत्रों में 159.2 करोड़ रुपए खर्च हुए. वहीं, आरटीआई के जरिए मिले एक जवाब में सरकार की तरफ से बताया गया था कि वित्त वर्ष 2016-17 में सरकार ने स्वच्छता से जुड़े विज्ञापनों पर 66 करोड़ रुपए खर्च किए. स्वच्छता को लेकर लोगों में जागरुकता के लिए विज्ञापन मद में किया गया ये खर्च बीते दो वित्तीय वर्ष के मुकाबले कम है. 2015-16 में इस मद में 162.50 करोड़ रुपए तथा 2014-15 में 121.22 करोड़ खर्च हुए. यानि सरकार की मानें तो कुल मिलाकर अब तक सिर्फ स्वच्छ भारत अभियान के प्रचार में लगभग 350 करोड़ रुपए खर्च किए जा चुके हैं. जिस आरटीआई के जरिए ये जवाब मिला था उसमें सरकार द्वारा अब तक बनाए गए शौचालयों की संख्या और डस्टबिन के वितरण से संबंधित जानकारी भी मांगी गई थी, जिसका कोई भी संतोषजनक जवाब सरकार की तरफ से नहीं दिया गया.

विपक्ष तो ये भी आरोप लगा रहा है कि सरकार स्वच्छ भारत सेस के जरिए जमा हुए पैसों का खर्च योजना के लिए न कर के अपने प्रचार-प्रसार के लिए कर रही है. 15 मई को मध्य प्रदेश के अमरकंटक में प्रधानमंत्री मोदी की रैली थी. उन्होंने नर्मदा सेवा यात्रा के समापन समारोह को संबोधित किया. कांग्रेस का आरोप है कि इस कार्यक्रम में स्वच्छ भारत अभियान के मद का पैसा खर्च किया गया. मध्य प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष अरुण यादव ने आरोप लगाया है कि प्रधानमंत्री की अमरकंटक यात्रा और उनके कार्यक्रम पर 100 करोड़ रुपए से ज़्यादा खर्च कर सरकारी धन का दुरुपयोग किया गया. इसके लिए राज्य कार्यक्रम अधिकारी की ओर से अमरकंटक में प्रशिक्षण हेतु जाने वाले प्रेरकों के लिए प्रति व्यक्ति 500 रुपए जारी किए गए थे.■

मलीन मन से गंगा निर्मल कैसे होगी

गंगा की सफाई मोदी सरकार की महत्वकांक्षी योजनाओं में शामिल रही है. इसे गति देने के लिए एकीकृत राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन, नमामी गंगे की शुरुआत की गई. लेकिन इन तीन सालों के दौरान नमामी गंगे की क्या प्रगति है, इसे हाल ही में आए एक आरटीआई जवाब से समझा जा सकता है. केंद्रीय प्रदूषण निवंत्रण बोर्ड (सीपीसीबी) ने एक आरटीआई के जवाब में कहा है कि उत्तराखंड में गंगोत्री से लेकर हरिद्वार तक गंगा का पानी नहाने के लायक भी नहीं है. सीपीसीबी ने गंगोत्री से हरिद्वार के बीच करीब 10 जगहों से गंगा के जल का सैंपल लेने और उसकी जांच करने के बाद उसमें मिले कई हानिकारक कारकों की उपस्थिति के बाद ये बात कही है.

नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्री उमा भारती ने पदभार ग्रहण करते हुए कहा था कि नमामी गंगे के अच्छे परिणाम अक्टूबर 2016 से दिखने शुरू हो जाएंगे. लेकिन मंत्री जी के इस डेड लाइन से महज दो महीने पहले आए एक आरटीआई जवाब ने गंगा सफाई के लिए सरकार के प्रयासों की कलई खोल दी. उस जवाब में कहा गया था कि राष्ट्रीय गंगा सफाई मिशन के लिए 2014-15 में आवंटित 2,137 करोड़ रुपए में से बाद में 84 करोड़ की कटौती कर दी गई. इसके बाद भी इसमें से सिर्फ 326 करोड़ रुपए खर्च किए गए. उसी तरह 2015-16 के 2,750 करोड़ रुपए के बजट को घटाकर 1,650 करोड़ रुपए कर दिया गया. उस आरटीआई में कहा गया था कि मौजूदा वित्त वर्ष (2016-17) में आवंटित 2,500 करोड़ रुपए में से अब तक कितना खर्च हुआ, इसका केंद्र सरकार के पास कोई विवरण मौजूद नहीं है. गंगा सफाई को अपनी प्राथमिकता बताने वाले प्रधानमंत्री इसे लेकर कितने गंभीर हैं, इसका भी प्रमाण इस आरटीआई से मिलता है. इसमें बताया गया था कि राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण (एनजीआरबीए) की तीन बैठकों में से प्रधानमंत्री ने सिर्फ एक बैठक की अध्यक्षता की थी. वर्तमान वित्त वर्ष 2017-18 के लिए सरकार ने नमामी गंगे और नेशनल गंगा प्लान के लिए लिए 2250 करोड़ के बजट का प्रावधान किया है.

पहला डेड लाइन फेल होने के बाद गंगा संरक्षण मंत्री उमा भारती ने गंगा सफाई के लिए अक्टूबर 2018 का लक्ष्य तय किया. उन्होंने कहा था, 'हमारा गंतव्य अक्टूबर 2018 है और हम दुनिया को दिखा देंगे कि गंगा दुनिया की सबसे स्वच्छ नदियों में से एक है.' इसके बाद केंद्रीय सड़क परिवहन और जहाजरानी मंत्री नितिन गड़करी ने गंगा की सफाई के लिए डेड लाइन को पांच वर्ष आगे बढ़ाते हुए कहा, 'अगले पांच वर्ष में गंगा की सफाई होगी.'

अभी गंगा के तट पर 764 उद्योग हैं,जो गंगा के प्रदूषण के लिए सबसे बड़े कारक हैं. इसमें 444 चमड़ा उद्योग, 27 रसायनिक उद्योग, 67 चीनी मिलें, 33 शराब उद्योग, 22 खाद्य और डेयरी उद्योग, 63 कपड़ा एवं रंग उद्योग, 67 कागज एवं पल्प उद्योग और 41 अन्य उद्योग शामिल हैं. इनके दूषित जल को साफ कर गंगा में प्रवाहित करने की कोशिश अब तक परवान चढ़ती नहीं दिख रही है. सात भारतीय प्रौद्योगिक संस्थानों के कंसोर्टियम द्वारा तैयार एक रिपोर्ट बताती है कि गंगा बेसिन के अंतर्गत आने वाले राज्यों में हर दिन सीवेज का 12,051 एमएलडी गंदा पानी पैदा होता है. जबकि इन राज्यों में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट की क्षमता केवल 5,717 एमएलडी है. गंगा के किनारे बसे 31 शहरों में से केवल चार शहरों कन्नौज, कानपुर, मोरादाबाद, और बरेली में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट मौजूद हैं. हैरानी की बात है कि इनमें भी केवल कन्नौज का प्लांट अभी चालू है. अब ये सोचने वाली बात है कि ऐसे प्रयासों से भागीरथ की गंगा को उमा भारती कैसे स्वच्छ कर पाएंगीं.■

जन्मदिन पर विशेष

आज ख़ामोश है संसद से सड़क तक गूंजने वाली आवाज़

कर्नाटक के मैंगलोर में 3 जून 1930 को जॉर्ज फर्नांडिस का जन्म हुआ. उनकी मां का नाम एलीस मार्था फर्नांडिस और पिता का नाम जॉन जोसफ फर्नांडिस था. उनकी मां किंग जॉर्ज पंचम की बहुत बड़ी प्रशंसक थीं, जिनका जन्म भी 3 जून को हुआ था. इसी कारण इनका नाम जॉर्ज रखा गया. स्कूल की पढ़ाई के बाद परिवारिक परंपरा के निर्वहन के लिए बड़े पुत्र होने के नाते उन्हें धर्म की शिक्षा के लिए बैंगलोर में सेंट पीटर सेमिनरी भेज दिया गया. धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के दौरान ही 19 वर्ष की आयु में वहां हो रहे भेदभाव के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई और धार्मिक विद्यालय छोड़ दिया.

जन्मः 3 जून 1930, मैंगलोर, कर्नाटक

"जॉर्ज फर्नांडिस को डॉक्टर लोहिया जॉर्ज कहकर बुलाते थे और यही उनका संक्षिप्त नाम मशहूर हो गया. जॉर्ज ने बीस साल की उम्र के बाद अपने को आम आदमी, मज़दूर और ग़रीब के दु:ख से जोड़ लिया. उस समय की बंबई की बेस्ट की लड़ाई और उसमें जॉर्ज के नेतृत्व में जीत ने जॉर्ज को मज़दूरों का हीरो बना दिया. समाजवादी आंदोलन टुकड़ों में भले बंटा, पर जॉर्ज का संघर्ष नहीं बंटा. जहां मज़दूर वहां जॉर्ज. बिहार आंदोलन आया और जॉर्ज उसमें कूद पड़े. 1967 के आम चुनाव में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में बॉम्बे की दक्षिण संसदीय सीट से उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उस दौर के प्रसिद्ध नेता सदाशिव कानोजी को हराया."

चौथी दुनिया ब्यूरो

माता-पिता द्वारा धर्म की शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा गया लड़का अगर मजदूरों की लड़ाई और उनके साथ न्याय को अपने जीवन का ध्येय बना ले, तो उसमें जनहित और समाज के लिए जीने का भाव कितना अधिक होगा ये सहज ही समझा जा सकता है. एक ट्रेड यूनियन नेता, राजनेता, पत्रकार और यहां तक कि देश के रक्षामंत्री के रूप में भी जॉर्ज फर्नांडिस के लिए जनता का हित सर्वोपरी रहा. वे जब तक सक्रीय राजनीति में रहे, हमेशा ही शोषितों, वंचितों और मजदूरों के अधिकारों के लिए संघर्ष करते रहे.

कर्नाटक के मैंगलोर में 3 जून 1930 को जॉर्ज फर्नांडिस का जन्म हुआ. उनकी मां का नाम एलीस मार्था फर्नांडिस और पिता का नाम जॉन जोसफ फर्नांडिस था. उनकी मां किंग जॉर्ज पंचम की बहुत बड़ी प्रशंसक थीं, जिनका जन्म भी 3 जून को हुआ था. इसी कारण इनका नाम जॉर्ज रखा गया. स्कूल की पढ़ाई के बाद परिवारिक परंपरा के निर्वहन के लिए बड़े पुत्र होने के नाते उन्हें धर्म की शिक्षा के लिए बैंगलोर में सेंट पीटर सेमिनरी भेज दिया गया. धार्मिक शिक्षा ग्रहण करने के दौरान ही 19 वर्ष की आयु में वहां हो रहे भेदभाव के खिलाफ उन्होंने आवाज उठाई और धार्मिक विद्यालय छोड़ दिया. वहां विधालय के फादर्स उंची टेबलों पर बैठकर अच्छा भोजन करते थे, जबकि प्रशिक्षणार्थियों को ऐसी सुविधा नहीं मिलती थी. जॉर्ज को ये अच्छा नहीं लगा. इसके बाद उन्होंने मैंगलोर के सड़क परिवहन, उद्योग, रेस्टोरेंट और होटल में कार्यरत श्रमिकों को एकजुट किया. फिर 1949 में वे नौकरी की तलाश में बॉम्बे आ गए. यहां उन्हें एक अखबार में प्रूफ रीडर की नौकरी मिल गई. यहीं पर उनका संपर्क अनुभवी यूनियन नेता प्लासिड डी मेलो और समाजवादी राममनोहर लोहिया से हुआ. जिनका बहुत प्रभाव जॉर्ज के जीवन पर रहा.

जॉर्ज फर्नांडिस को डॉक्टर लोहिया जॉर्ज कहकर बुलाते थे और यही उनका संक्षिप्त नाम मशहूर हो गया. जॉर्ज ने बीस साल की उम्र के बाद अपने को आम आदमी, मज़दूर और ग़रीब के दु:ख से जोड़ लिया. उस समय की बंबई की बेस्ट की लड़ाई और उसमें जॉर्ज के नेतृत्व में जीत ने जॉर्ज को मज़दूरों का हीरो बना दिया. समाजवादी आंदोलन टुकड़ों में भले बंटा, पर जॉर्ज का संघर्ष नहीं बंटा. जहां मज़दूर वहां जॉर्ज. बिहार आंदोलन आया और जॉर्ज उसमें कूद पड़े. 1967 के आम चुनाव में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रूप में बॉम्बे की दक्षिण संसदीय सीट से उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उस दौर के प्रसिद्ध नेता सदाशिव कानोजी को हराया. ऑल इंडिया रेलवे मेंस

फेडरेशन का अध्यक्ष रहते हुए उन्होंने 1974 में लाखों कामगारों के रेलवे हड़ताल का नेतृत्व किया. जॉर्ज के नेतृत्व में रेल कर्मचारियों ने रेल पटरी तीन दिनों के लिए सूनी कर दी. पचहत्तर में आपातकाल लगा, जॉर्ज भूमिगत हो गए. अंडरग्राउंड होकर आपातकाल विरोधी आंदोलन संगठित किया. मशहूर बड़ौदा डायनामाइट कांड हुआ, जॉर्ज पकड़े गए. जेल में रहते लोकसभा का चुनाव जीते और सतहत्तर में केंद्रीय मंत्री बने. कोकाकोला को भारत से जाने पर विवश किया, ताकि भारतीय पेय को बाज़ार मिल सके. 1994 में उन्होंने समता पार्टी की स्थापना की. परिस्थितियों ने उन्हें अटल जी के साथ जोड़ा. प्रधानमंत्री वाजपेयी के मंत्रिमंडल में वे एकमात्र ईसाई थे और संचार, उद्योग, रेलवे तथा रक्षा विभागों के मंत्री रहे. मार्च 2001 में तहलका रक्षा घोटाला सामने आने के बाद जॉर्ज फर्नांडिस ने इस गड़बड़ी की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए रक्षा मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया. हालांकि आठ माह से भी कम समय के भीतर ही उन्हें फिर से उस पद पर नियुक्त कर दिया गया.

जॉर्ज का व्यक्तिगत जीवन काफ़ी दु:खपूर्ण रहा है. 1971 में उन्होंने मशहूर कांग्रेसी नेता हुमायूं कबीर की बेटी लैला कबीर से शादी की, लेकिन लैला कबीर कभी लैला जॉर्ज फर्नांडिस नहीं बन पाईं. उनका इगो, उनकी अकड़ और जॉर्ज की ज़िंदगी पर उनकी छींटाकशी के कारण वे कभी भी जॉर्ज का हमसफर नहीं बन पाईं. एक बेटा होने के बाद भी 1980 में दोनों अलग हो गए. इसके बाद जॉर्ज 1984 में जया जेटली के करीब आए. व्यक्तिगत जीवन से इतर राजनीति में भी जॉर्ज को धोखे मिले. जिनके लिए जॉर्ज ने लड़ाई लड़ी, बाद में उन्होंने ही जॉर्ज को किनारे कर दिया. 2009 के लोकसभा चुनाव में हार के बाद जॉर्ज की बुरी हालत हो गई थी. उनके पास रहने का कोई ठिकाना नहीं था. मुंबई की यूनियन के साथियों ने उनके लिए हौजखास में एक मकान ख़रीदा था, पर मकान का टाइटिल यूनियन के नाम था. उस यूनियन ने जॉर्ज को मकान में न आने देने की कोशिश की. जॉर्ज के दोस्त उनके लिए किराए का मकान तलाश रहे थे. तभी नीतीश कुमार ने उन्हें बिहार से राज्यसभा के लिए भेज दिया. यह नीतीश का जॉर्ज के प्रति आदर था, क्योंकि तीन महीने पहले ही जॉर्ज नीतीश और शरद यादव से अलग होकर लोकसभा का चुनाव लड़े थे और हारे थे.

पिछले कुछ सालों से जॉर्ज फर्नांडिस बीमारी से जूझ रहे हैं, जिसके कारण राजनीति से उनका नाता टूट गया है. वे पार्किन्संस और अल्जाइमर रोग से पीड़ित हैं. जॉर्ज की बिमारी छठी स्टेज में आ गई है. इसकी केवल सात स्टेज होती हैं. इस दौर में जया जेटली जॉर्ज के साथ लगातार रहीं और उनकी देखभाल एक बच्चे की तरह करती रहीं. जॉर्ज अपनी छोटी-बड़ी हर आवश्यकता के लिए उन पर निर्भर थे. जॉर्ज का इलाज एम्स के दो डॉक्टर पिछले दस सालों से कर रहे थे. अचानक लैला कबीर, लैला फर्नांडिस बनकर भारत आ गईं, उनके साथ उनका बेटा भी था. जॉर्ज उन्हें देखकर बिफ़र गए. जॉर्ज ने कभी लैला को पसंद नहीं किया, उनके हज़ारों साथी इस बात को जानते हैं, देश का हर नेता इसे जानता है. जॉर्ज की स्थिति बिल्कुल बच्चे जैसी हो गई है. लैला कबीर जॉर्ज को लेकर बाबा रामदेव के आश्रम पहुंच गईं. वहां जॉर्ज कुछ दिन रहे. बाबा रामदेव ने दावा किया कि उन्होंने जॉर्ज को बोलने के क़ाबिल बना दिया है. अब जॉर्ज को लैला कबीर दिल्ली वापस लाई हैं और उन्हें अपने मकान में रखा है. यहां जॉर्ज के लिए सब अजनबी हैं. उनके साथ पच्चीस सालों से रह रहे लोग नहीं हैं, बिस्तर नहीं है, किताबें नहीं हैं, उनके पालतू पशु नहीं हैं, दीवारें नहीं हैं. यहां हैं तो लैला, जिन्हें जॉर्ज ने कभी पसंद नहीं किया. जॉर्ज फर्नांडिस हमारे बीच हैं, लेकिन उनकी ज़िंदगी आज ऐसे मोड़ पर पहुंच गई है, जो कितनी है कितनी नहीं, पता ही नहीं. एक जानदार ज़िंदादिल आदमी, जिसके जीवन में संघर्षों की लंबी फेहरिस्त है, आज बेजान खिलौना सा बन गया है.■

जल संग्राम

जल संरक्षण

वर्षा जल को ऐसे बचाएं

बारिश का जल यूं ही व्यर्थ न जाए, इसके लिए किसान कई काम कर सकते हैं. जैसे, अधिक ढलान वाली जमीन को समतल बनाया जा सकता है. समतलीकरण करने से जमीन पर वर्षा जल के बहाव में रुकावट आएगी, जिससे भू-क्षरण कम होगा. इससे भूमि में जल की मात्रा भी बढ़ाई जा सकती है. ढलान वाले खेतों का समतलीकरण करते हुए ये ध्यान रखना चाहिए कि खेतों के चारो ओर मेढ़ बनाया जाय, ताकि खेत का पानी एवं मिट्टी खेत में ही रहें. ढलान वाले खेतों के ऊंचे समतल स्थान पर सोक पिट एवं बारो पिट का निर्माण कराया जा सकता है. इससे ऊंचे स्थान का पानी नीचे नहीं बहेगा. साथ ही खेतों का पानी जमीन में अवशोषित होते रहेगा, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहेगी. सोक पिट एवं बारो पिट छोटी-छोटी संरचनाएं होती हैं. अत: इनके निर्माण में अधिक खर्च नहीं आता. कई जगहों की जमीनें अधिक ढलान वाली होती हैं, जिन्हें समतल करना आसान नहीं होता. ऐसी जमीनों पर वर्षा जल के संरक्षण के लिए कंटूर ट्रेंच का निर्माण किया जा सकता है. ऐसे खेतों के निचले हिस्से में फलदार वृक्षों का रोपण करना चाहिए. इससे खेतों में अधिक पानी रुकता है एवं मृदा कटाव में भी कमी आती है.

वर्षा जल संरक्षण के लिए छोटी डबरी का निर्माण भी एक कारगर उपाय है. ये मध्य भूमि में निर्मित होने वाले छोटे आकार के तालाब होते हैं, जिन्हें रिसन तालाब भी कहा जाता है. वर्षा जल ऊंचाई से बहता हुआ इसमें एकत्रित होता है. इस तालाब की विशेषता ये होती है कि इसमें जो वर्षा जल एकत्रित होता है, वो भूमि में रिसन के द्वारा भू-जल की मात्रा को बढ़ाता है. सिंचाई के लिए भी इसमें से जल लिया जा सकता है. हालांकि इन तालाबों में वर्षा जल अधिक समय तक नहीं ठहरता. लेकिन इनमें से जमीन के अंदर जल के अवशोषित होने के कारण भू-जल मात्रा में वृद्धि होती है, साथ ही जमीन की नमी भी बढ़ जाती है. ऐसे डबरी अपरोक्ष रूप से फसलों के लिए बहुत ही लाभकारी होते हैं.

निचली भूमि में वर्षा जल संरक्षण के लिए तालाब का निर्माण किया जाता है. निचली भूमि में स्थित होने के कारण इनमें लंबे समय तक वर्षा जल संग्रहित रहता है. बरसात के बाद दूसरी फसल के लिए भी इन तालाबों में पर्याप्त मात्रा में सिंचाई जल उपलब्ध होता है. ऐसे तालाबों के निर्माण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उनमें जल प्रवेश एवं जल निकासी मार्ग अवश्य रूप से बना हुआ हो. तालाब जल संरक्षण तकनीक की एक वृहद संरचना होती है. तालाबों की जल धारण क्षमता का विशेष ध्यान रखना चाहिए. इन सब तकनीकों को अपनाकर किसान वर्षा जल का समुचित संग्रहण कर उचित समय पर उपयोग कर सकते हैं.■

त्वरित जल परीक्षण किट को अपनाएं, रोग दूर भगाएं

रक्षा अनुसंधान प्रयोगशाला ने त्वरित जल परीक्षण इकाई 'गूंज' का निर्माण किया है. गूंज दुर्गम क्षेत्रों मे निवास कर रहे लोगों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन क्षेत्रों में स्वच्छ पेय जल की अनुपलब्धता रहती है. ऐसे क्षेत्रों में जल-जनित रोगों से छुटकारा पाने के लिए पेयजल की गुणवत्ता की जांच आवश्यक है. जल-जनित रोग जन-स्वास्थ्य के लिए बहुत ही घातक हाते हैं. कोई भी अल्प शिक्षित व्यक्ति अपने साधारण ज्ञान के इस्तेमाल से गूंज का प्रयोग कर जल की गुणवत्ता का पता लगा सकता है. यह इकाई जल का परीक्षण भौ-रसायनिक और जैविक दोनों तरीकों से करती है. गुंज से जल का जैविक परीक्षण स्वीकृत/अस्वीकृत आधार पर होता है. इस इकाई से पीएच, फ्लोराइड, जल का गंदलापन, नाइट्रेट, कुल कठोरता, शेष क्लोरीन, क्लोराइड, कोलिफार्म जीवाणु आदि की जांच की जा सकती है. इस किट के साथ जल के 100 परिक्षणों हेतु आवश्यक रसायन दिए गए हैं. बाजार में उपलब्ध अन्य किट की तुलना मे ये किट अधिक टिकाऊ एवं सस्ता है. इस किट को पर्वतीय क्षेत्रों मे ले जाना और उपयोग करना बड़ा सरल है. इसके इस्तेमाल के लिए बिजली की भी कोई आवश्यकता नही है. किट की उपयोग विधि सरल एवं सटीक है. कोई अर्ध-निपुण व्यक्ति भी इसका उपयोग कर सकता है. यह पेयजल की गुणवत्ता सुनिश्चित करता है.■

पायरिया कारण और निवारण

ariskon Pharma Pvt.Ltd.
An ISO 9001 : 2008 Certified Co.

मॉं शारदा डेन्टल क्लिनिक
पुरानी जेल रोड, नवादा
डॉ.अजय कुमार (बीडीएस.)

नवादा के युवा लेकिन अनुभवी डॉ. अजय कुमार जिनका पुरानी जेल रोड में क्लिनिक है ने पायरिया से सम्बन्धित बात की और बताया कि मसूढ़ों में सूजन, बदबू आना, और खून निकलने की प्रक्रिया को पायरिया कहते हैं इसमें दांत भी गंदे हो जाते हैं। इसमें जो क्रोनिकल होते हैं। वह जन्म से ही शरीर में आ जाते हैं शुरूआत में यह नहीं पता चलता है परंतु किशोरावस्था से यह पता चलने लगता है इसलिए सबसे पहले ध्यान दें कि मसूढ़ों में परेशानी न होने पाये इसके लिए **कुछ टिप्स हैं** -1) नियमित दो टाईम ब्रश करें सुबह और रात को। हर तीन महीने में ब्रश को बदलें। ब्रश का समय 2 से 3 मिनट होना चाहिए। स्वाद के अनुसार पेस्ट का चुनाव करें यदि दांत आपके सेन्सेटिव हैं तो डॉक्टर से परामर्श कर पेस्ट का चुनाव करें। **खासकर पायरिया वालों के लिए और जरूरी है ब्रश करते वक्त** ब्रश को 90 डिग्री नहीं 45 डिग्री पर लाकर घुमायें। जैसे झाड़ू मारते हैं उसी तरीके से दांतों पर घुमायें। सबसे महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए **डॉ अजय** ने बताया कि आप कुल्ला अवश्य करें जब भी खाना खायें या नाश्ता करें तो अपने साफ और बिना बढ़े हुए नाखुन वाले हाथों से कुल्ला अवश्य करें। चाहे वह बच्चा हो या बड़ा। बच्चे जब भी चिपचिपा पदार्थ खाते है तो कुल्ला अवश्य करायें मुंह में अंगुल डालकर और रगड़ कर। बाजार में डेन्टल फ्लॉस धागा आता है उससे दो दांतों के बीच फंसे पदार्थ को अवश्य निकालें। डॉ. अजय ने पायरिया पेसेन्ट के बारे में बताया कि किशोरों के लिए अल्ट्रासोनिक स्केलिंग द्वारा सफाई होती है उसके बाद विशेष प्रकार की दवाई,पेस्ट एवं माउथवाश की सलाह दी जाती है। उन्होंने बताया कि पायरिया होते ही तुरंत चिकित्सक से परामर्श लें। अंत में डॉ. अजय ने उनके बैलेन्स डायट के बारे में बताया कि कैल्शियम युक्त, हरी, पत्तेदार सब्जी खायें और साल में एक बार अल्ट्रासोनिक स्केलिंग अवश्य करायें। ■ भारती

ACOBA CAP/SYP/INJ
Methylcobalmin, Lycopene, Multivitamin Multimineral, Ginseng & Antioxident

Carbo - XT
Ferrous Ascorbate with Folic Acid Tab.

AREX
Dextromethorphan, Guaiphenesine Ammonium chloride Cough Syp.

ASRFEN-P
Acedofenac+Paracetamol Serratiopeplidase Tab.

ECTALOPAM
Escilalopram oxalate & Clonazepam Tablets

SILIPLEX
Silymarin, Vitamin B-Complex & Lactic acid, Calcium, Bacillus Cap/Syp

NOKSIRA Pharma Pvt.Ltd.

प्रभास के लिए ही लिखा गया था बाहुबली का किरदार : राजमौली

बाहुबली-2 के ब्लॉकबस्टर होने के बाद फिल्म निर्देशक एस. एस. राजामौली ने कहा है कि उनकी फिल्म बाहुबली का केंद्रीय किरदार केवल और केवल दक्षिण के अभिनेता प्रभास के लिए लिखा गया था. बाहुबली के किरदार को रचे जाने के समय को याद करते हुए राजामौली ने कहा, प्रभास और मैंने दस साल पहले एक फिल्म पर काम किया था और तभी हम गहरे दोस्त बन गए थे. राजमौली ने आगे बताया कि प्रभास ने पूरे तीन साल कोई और काम न लेकर खुद को बाहुबली के लिए समर्पित कर दिया था. इस फिल्म को बनाने में पांच साल लग गए और प्रभास इसके लिए हमेशा उपलब्ध थे. उन्होंने कहा कि इस फिल्म के लिए प्रभास तब भी मौजूद थे, जब किरदारों का लिखा जाना भी शुरू नहीं हुआ था. राजमौली ने फिल्म में प्रभास के काम की भी खूब तारीफ की. ■

दुनियाभर में बाहुबली की दहाड़

एसएस राजमौली की फिल्म बाहुबली-2 बॉक्स ऑफिस पर कमाई के कई रिकॉर्ड तोड़ चुकी है. फिल्म के सभी किरदारों ने अपने पॉवरफैक परफॉर्मेंस से इस फिल्म को ब्लॉकबस्टर बना दिया है. बाहुबली-2 को भारत में 6500 और दुनियाभर में 9000 स्क्रिन पर रिलीज किया गया. फिल्म ने पहले ही दिन सभी भाषाओं में वर्ल्डवाइड लगभग 160 करोड़ की कमाई कर सेंचुरी लगा दी और इसी के साथ बाहुबली-2 भारतीय सिनेमा की सबसे बड़ी ओपनिंग देने वाली फिल्म बन चुकी है.

प्रवीण कुमार

साल 2015 में बॉक्स ऑफिस पर दक्षिण भारतीय फिल्म *बाहुबली: द बिगनिंग* ने भारत ही नहीं बल्कि दुनियाभर में तहलका मचा दिया था और यह फिल्म ऑलटाईम ब्लॉकबस्टर साबित हुई थी. फिल्म बाहुबली में वह सब कुछ था, जिसे देखने के बाद हर कोई फिल्म की तारीफ करते नहीं थक रहा था. फिल्म में वीएफएक्स का इस्तेमाल, तेज तर्रार स्टोरी और सभी लोगों का शानदार अभिनय इस फिल्म की जान थी. फिल्म की एंडिंग कुछ ऐसी थी कि इसके अगले भाग को लेकर लोगों में दो साल तक क्रेज बना रहा. हर कोई जानना चाहता था कि *कटप्पा ने बाहुबली को क्यों मारा!*

दो साल के इंतजार के बाद दर्शकों का यह क्रेज इस साल खत्म हुआ और एक बार फिर से बॉक्स आफिस पर बाहुबली की सुनामी देखने को मिली. ये सुनामी पहले वाली बाहुबली से ज्यादा ताकतवर साबित हुई. हालांकि किसी ने सोचा नहीं था कि ये दूसरी फिल्मों के लिए इतनी खतरनाक साबित होगी. बाहुबली-2 ने बॉक्स ऑफिस पर पहले ज्यादा कमाई करने का एक अनूठा ही रिकॉर्ड अपने नाम कर लिया है, जिसे तोड़ पाना अब किसी के लिए भी असान नहीं होगा.

बाहुबली-2 को भारत में 6500 और दुनियाभर में 9000 स्क्रिन पर रिलीज किया गया. फिल्म ने पहले ही दिन सभी भाषाओं में वर्ल्डवाइड लगभग 160 करोड़ की कमाई कर सेंचुरी लगा दी और इसी के साथ बाहुबली-2 भारतीय सिनेमा की ओर से सबसे बड़ी ओपनिंग देने वाली फिल्म बन चुकी है. यह बाहुबली का ही क्रेज था जिसने बॉक्स ऑफिस पर रिकॉर्ड कमाई करते हुए पहले हिन्दी वर्जन में तेजी से सौ, दो सौ, तीन सौ और अब 400 करोड़ की कमाई का एक शानदार रिकॉर्ड अपने नाम कर लिया है. जी हां, बॉलीवुड में अब 400 करोड़ की एंट्री का भी अगाज़ हो चुका है. जिसकी शुरुआत बाहुबली-2 ने कर दी है.

इससे पहले आमिर खान ही ऐसे अभिनेता थे, जिन्होंने बॉलीवुड में सबसे पहले फिल्म *गजनी* से सौ करोड़, *3 इडियट* से दो सौ करोड़ और *पीके* से तीन सौ करोड़ क्लब की शुरुआत की थी. लेकिन बाहुबली-2 ने अब 400 करोड़ क्लब की शुरुआत क दी है. इसके साथ ही बाहुबली-2 ने भारत की ओर से अब तक सबसे ज्यादा कमाई करने का रिकॉर्ड भी अपने नाम कर लिया है. फिल्म ने 21 दिनों में वर्ल्डवाइड लगभग 1505 करोड़ से ज्यादा की कमाई करके सभी को चौंका दिया है. फिल्म ने केवल भारत में ही 1230 करोड़ का सकल (ग्रोस) व्यापार किया है.

रिलीज होने के तीसरे सप्ताह में भी बाहुबली-2 का क्रेज बना हुआ है. तीसरे सप्ताह में बॉक्स ऑफिस पर दो फिल्में आईं, *सरकार-3* और *मेरी प्यारी बिंदु*. बाहुबली-2 की वजह से ये दोनों ही फिल्में औंधे मुंह गिरीं और दोनों ही फिल्मों को 2017 की फ्लॉप फिल्मों की लिस्ट में शामिल होना पड़ा. इससे साफ़ ज़ाहिर है कि दर्शकों के दिमाग़ से बाहुबली नाम का बुखार अभी तक उतरा नहीं है. बाहुबली-2 ने हिंदी वर्जन में बॉक्स ऑफिस पर 400 के बाद 450 करोड़ क्लब की शुरुआत भी कर दी है. ऐसी संभावना है कि हिन्दी वर्जन में फिल्म का लाइफटाइम कलेक्शन लगभग 500 करोड़ से ज्यादा हो सकता है. बाहुबली-2 हिन्दी वर्जन में मात्र 21 दिनों में लगभग 461 करोड़ रुपए का व्यवसाय कर चुकी है. फिल्म अभी भी सिनेमा घरों में मज़बूत पकड़ बनाए हुए है. बॉक्स ऑफिस पर बाहुबली-2 की कमाई का ये सिलसिला अगर इसी तरह से चलता रहा, तो यकीनन फिल्म की कमाई को 500 करोड़ होने से कोई नहीं रोक सकता.

भारत से बाहर फिल्म की कमाई की बात करें, तो सिर्फ नॉर्थ अमेरिका में बाहुबली-2 ने अब तक सौ करोड़ से ज्यादा की कमाई कर ली है. यह अपने आप में एक रिकॉर्ड है. बाहुबली-2 ऑस्ट्रेलिया में सबसे ज्यादा कमाने वाली दूसरी फिल्म बन चुकी है. बाहुबली-2 से आगे फिलहाल वहां सिर्फ आमिर खान की दंगल है. वहीं दूसरी ओर ओवरसीज मार्केट में फिल्म ने लगभग 300 करोड़ की कमाई कर ली है. आने वाले कुछ समय में बाहुबली-2 की कमाई को लेकर सारी बाते साफ़ हो जाएंगी कि बॉक्स ऑफिस पर ये फिल्म वर्ल्डवाइड कितना कलेक्शन करती है! ■

नोटः फिल्म के सभी आंकड़े 21 दिनों के आधार पर बताएं गए हैं.

feedback@chauthiduniya.com

प्रभास की होगी अग्निपरीक्षा

प्रभास के करियर के लिए फिल्म बाहुबली सबसे बड़ा टर्निंग प्वाइंट साबित हुई है. फिल्म के लिए उन्होंने जितनी अधिक मेहनत की है, वो कर पाना सबके बस की बात ही नहीं है. ना सिर्फ प्रभास, बल्कि फिल्म के हर एक्टर की तारीफ हो रही है. प्रभास ने इस फिल्म के लिए अपने करियर के 5 साल दे दिए. ये किसी भी स्टार के लिए बहुत बड़ी बात है. फिल्म की शानदार सफलता के बाद प्रभास ने अपनी फीस में भी इजाफा कर दिया है. बताया जा रहा है कि बाहुबली-2 के लिए उन्हें 25 करोड़ दिए गए थे.

सबको यही लग रहा है कि प्रभास इस फिल्म के बाद सबसे बड़े सुपरस्टार बन चुके हैं. उन्हें सलमान खान और शाहरुख खान से भी बड़ा स्टार माना जा रहा है. लेकिन बड़ा सवाल ये है कि क्या वाकई बाहुबली की सफलता से उन्हें उतना फायदा मिलेगा, जितना सोचा जा रहा है. जिस प्रकार से हर चीज के फायदे और नुकसान होते हैं, वैसे ही बाहुबली की अपार सफलता के बाद प्रभास को फायदा तो होगा, लेकिन इसके कुछ नुकसान भी हैं. जानते हैं उनके बारे में...

उम्मीदों का बोझ : बाहुबली के बाद प्रभास से लोगों की उम्मीद बहुत ही बढ़ गई है. लोगों को लगने लगा है कि वे अब हर फिल्म में बाहुबली जैसा कमाल करेंगे. दर्शकों की इस उम्मीद पर टिके रहना प्रभास के लिए बड़ी बात होगी.

फैन फॉलोइंग : बाहुबली के बाद प्रभास की फैन फॉलोइंग में इतना इजाफा हुआ है, जिसकी उन्होंने शायद कल्पना भी नहीं की होगी. इसे बनाए रखने के लिए उन्हें आगे काफी ज्यादा सोच समझ कर फिल्मों का चुनाव करना होगा.

सोलो रोल : बाहुबली एक मल्टी स्टारर फिल्म है. प्रभास को इसमें बेजोड़ डायरेक्शन, कॉन्सेप्ट और को-स्टार्स का फायदा मिला है. लेकिन अब आगे आने वाली फिल्मों में प्रभास को सोलो प्रूव करना होगा कि वो वाकई बाहुबली हैं. ■

शिवगामी ने कर दिया बड़ा ख़ुलासा

बाहुबली-2 में शिवगामी का किरदार निभाने वाली रम्या कृष्णनन को दर्शकों ने खूब पसंद किया है. फिल्म में शिवगामी की तेजतर्रार डायलॉग डिलीवरी ने लोगों को अपनी ओर खींचा है. एक तरफ जहां प्रभास ने अपने 5 साल इस फिल्म को दिए, वहीं बाहुबली की मां शिवगामी का रोल निभाने वाली रम्या कृष्णनन ने भी अपने बाकी सभी प्रोजेक्ट्स की डेट आगे बढ़ा कर बाहुबली को पूरा समय दिया. इस फिल्म की सफलता के बाद उन्हें भी अच्छी-खासी शोहरत मिली है. रम्या ने बाहुबली रिलीज होने के काफी समय बाद फिल्म से जुड़े कई मुद्दों पर मीडिया से बात की.

रम्या ने एक इंटरव्यू में फिल्म से जुड़ी कई बातें शेयर की. उन्होंने कहा कि बाहुबली ने मुझे नई ऊंचाइयों पर पहुंचा दिया है. मैं बाहुबली में अपने किरदार की तारीफ सुनकर काफी खुश हूं. पूरी टीम ने पांच साल तक बहुत मेहनत की है. मुझे राजमौली सर पर पूरा भरोसा था. उन्होंने जैसा कहा मैंने बिल्कुल वैसा किया.

फिल्म के बारे में रम्या ने कहा, मूवी में एक सीन ऐसा भी था, जिसे देखकर मैं खूब रोई थी. जब कटप्पा बाहुबली की मौत की ख़बर लेकर आते हैं और मेरे हाथों पर उसका ख़ून लगाते हैं, तो ये सीन देखकर मैं रो पड़ी थी.

रम्या ने आगे बताया कि पहले उन्हें ये फिल्म करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, क्योंकि प्रोड्यूसर्स को मेरी बहुत सारी डेट्स चाहिए थीं. उस दौरान मेरे कई और कमिटमेंट्स भी थे. मैं फिल्म को मना करने वाली थी. लेकिन राजमौली ने फिल्म की कहानी सुनाई तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए. कहानी सुनते ही मेरे दिमाग में हर सीन और हर शॉट बिलकुल क्लियर हो गया था.■

बाहुबली का कारनामा

बाहुबली-2 ने भारत सहित पूरी दुनिया में अपने नाम का डंका बजाकर बॉक्स ऑफिस पर छप्पर फाड़ कमाई की है. फिल्म ने कमाई के मामले में वैसे तो कई रिकॉर्ड अपने नाम कर लिए हैं, लेकिन हिंदी वर्जन में बाहुबली का रिकॉर्ड सबसे बेहतर माना जा रहा है. फिल्म का रिकॉर्ड ऐसा रहा कि महज 11 दिन में आमिर खान की फिल्म पीके (339.50 करोड़) और 14 दिन में दंगल (387.38 करोड़) की कमाई का रिकॉर्ड धाराशाही हो गया. बाहुबली ने बॉक्स ऑफिस पर महज 15 दिनों में ही 400 करोड़ की कमाई का रिकॉर्ड अपने नाम दर्ज कर लिया है. बाहुबली-2 की 15 दिनों की दिन प्रतिदिन कमाई का ब्योरा इस प्रकार है...

दिन	कमाई
1	41 करोड़
2	40.50 करोड़
3	46.50 करोड़
4	40.25 करोड़
5	30 करोड़
6	26 करोड़
7	22.75 करोड़
8	19.75 करोड़
9	26.50 करोड़
10	34.50 करोड़
11	16.75 करोड़
12	15.75 करोड़
13	17.25 करोड़
14	12.75 करोड़
15	10.50 करोड़
कुल	400.75 करोड़

ख़ूबसूरती की मिसाल हैं अनुष्का शेट्टी

बाहुबली में जहां एक तरफ फैंस बाहुबली यानी प्रभास की तारीफ करने नहीं थक रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ देवसेना यानि अनुष्का शेट्टी की भी खूब तारीफें हो रही हैं. हाल ही में दिए इंटव्यू में अनुष्का ने बाहुबली को सबसे स्पेशल फिल्म बताया था. साथ ही देवसेना के किरदार को लेकर उन्होंने कहा था कि ये किरदार मेरे दिल के सबसे करीब है. इस फिल्म के किरदार को निभाने के लिए मैंने अपनी पूरी ताकत जी जान से लगा दी. मैं नहीं चाहती थी कि देवसेना के किरदार को निभाने में कोई कमी रह जाए. मैं बहुत खुश हूं कि बाहुबली में देवसेना के किरदार को दर्शकों ने खूब पंसद किया.

बाहुबली-2 के बाद अनुष्का के फैन फॉलोइंग तो बढ़ी ही है, अनुष्का को लेकर लोगों की दीवानगी भी देखते ही बन रही है. लोग उनकी ख़ूबसूरती के साथ-साथ उनकी अदाकारी के भी कायल हो चुके हैं. फिल्म में एक ट्रेडिशनल और स्ट्रांग किरदार निभाने वाली अनुष्का रियल लाइफ में बेहद ग्लैमरस हैं. देवसेना के किरदार में सादे लुक में दिखीं अनुष्का का हॉट अवतार भी फैंस को खूब पसंद है.■

श्रद्धांजलि कई फिल्मों में सलमान खान की मां की भूमिका निभा चुकी हैं रीमा लागू

हमेशा के लिए सो गई बॉलीवुड की 'मां'

बॉलीवुड को मानो किसी की नज़र सी लग गई हो. पिछले लगभग एक साल में कई बड़े सितारे दुनिया को अलविदा कह गए. मशहूर अभिनेता विनोद खन्ना के निधन के सदमे से अभी बॉलीवुड ठीक से उभर भी नहीं पाया था कि जानी मानी अभिनेत्री रीमा लागू का दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया. वे 58 वर्ष की थीं. *मैंने प्यार किया* और *हम साथ साथ हैं* में सलमान खान की मां और *हम आपके हैं कौन* में माधुरी दीक्षित की मां के किरदार ने उन्हें और प्रसिद्धी दिलाई. रीमा लागू टीवी की दुनिया की भी एक स्थापित अभिनेत्री थीं. *तू तू मैं मैं* में अपने किरदार से वे सबकी फेवरिट सास बन गई थीं.

रीमा लागू की मां मराठी थियेटर की मशहूर आर्टिस्ट थीं. इसलिए बचपन में ही अभिनय की दुनिया से उनका नाता जुड़ गया. बॉलीवुड में उनका सितारा चमका फिल्म *कयामत से कयामत तक* के जरिए. इस फिल्म में उन्होंने जुही चावला की मां का किरदार निभाया था.

रीमा लागू के बारे में कहा जा सकता है कि एक तरफ वे फिल्मों की बेहतरीन मां थीं, तो वहीं टीवी की दुनिया की फेवरेट सासू मां. उनकी मासूम सी आवाज़ और भोलापन लिए उनका चेहरा उनके किरदार में जान डाल देता था.

रीमा लागू सलमान खान के साथ कई फिल्मों में दिखाई दीं. इनमें से ज्यादातर में वे सलमान खान की मां के रोल में नजर आईं. कई फिल्मों में उनके काम को लीड हीरो के बराबर सराहना मिलती थी. फिल्म *वास्तव* में संजय दत्त के बराबर अगर किसी को तवज्जो मिली, तो वो था रीमा लागू के मां का किरदार. इस फिल्म में वे अपने ही बेटे को इच्छा मृत्यु दे देती हैं. टीवी सीरियल *तू तू मैं मैं* में सुप्रिया पिलगांवकर के रूप में उनके सास के रोल को आज भी लोग याद करते हैं. रीमा लागू अभी स्टार प्लस पर आने वाले सीरियल नामकरण में दिखाई दे रही थीं. इसी बीच अचानक हुई उनकी मृत्यु से सब स्तब्ध हैं.■

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback@chauthiduniya.com